जैन इतिहास समिति प्रकाशन — २

जैन आचार्य चरितावली

(जैन आचार्य-परम्परा का काव्यबद्ध रूप)

रचनाकार

आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज

सम्पादक

गजसिंह राठोड़, जैन-न्यायतीर्थ

प्रकाशक

जैन इतिहास समिति, जयपुर

प्रकाशक :
जैन इतिहास समिति,
आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार,
लाल भवन, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३

प्रथम संस्करण : १९७१

मूल्य : छह रुपये

मुद्रक :
राज प्रिंटिंग वर्क्स,
किशनपोल बाजार, जयपुर-१

प्रकाशकीय

'पट्टावली प्रबन्ध सग्रह' के बाद 'जैन आचार्य चरितावली' के रूप में जैन इतिहास समिति का यह दूसरा प्रकाशन पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

'पट्टावली प्रबन्ध सग्रह' में जहाँ लोकागच्छ और स्थानकवासी परम्परा से सम्बन्धित १७ पट्टावलियाँ मूल रूप में सकलित की गई थी, वहाँ इस कृति में भगवान् महावीर से लेकर आज तक के प्रमुख जैनाचार्यों की परम्परा और उनकी चरितावली को पद्यबद्ध किया गया है।

इस काव्यकृति के रचनाकार हैं श्रद्धेय आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज। आचार्य श्री विगत कई वर्षों से जैन परम्परा के प्रामाणिक इतिहास-लेखन में मनोयोग पूर्वक लगे हुए है। उसका प्रथम भाग (भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर तक) अब मुद्रित हो रहा है।

इतिहास का विषय गहन और व्यापक होने के साथ-साथ शुष्क और नीरस भी है। उसमें सभी समान रुचि से रस नही ले पाते। परिणाम यह होता है कि सामान्य जन अपनी परम्परा, संस्कृति और धर्माचार्यों सम्बन्धी आवश्यक जानकारी से भी वंचित रह जाते है। इस कमी को पूरा करने के लिये आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज ने अपने साधनानिष्ठ व्यस्त जीवन में से कुछ समय निकाल कर जैन परम्परा के इतिहास को राग-रागिनियों में बाध कर, उसे सरस बनाकर सरल भाषा में प्रस्तुत किया है जिसे कंठस्थ कर सगीतप्रिय सामान्य व्यक्ति भी उसका आनन्द ले सकता है। इस उपकार के लिए समाज सदैव उनका ऋणी रहेगा।

विषय और भाव को अधिकाधिक स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक छन्द का अर्थ भी साथ-साथ दे दिया गया है।

इस कृति के इस रूप में पाठकों के सम्मुख आने की भी एक कहानी है। पाच-सात वर्ष पूर्व अपने प्रवचन मे आचार्य श्री ने इस चरितावली का मूल रूप में वाचन किया। श्रोता इससे बड़े प्रभावित हुए। जोधपुर, पाली, ब्यावर, नागौर आदि नगरों के जिज्ञासु श्रावकों ने इसको अधिकाधिक सुनने की उत्कंठा प्रकट की। बहुतों ने इसके विस्तृत नोट भी लिये। पर मूल पाठ के कवितामय होने से पूरे भाव स्पष्ट नही होते थे। इस पर इसके विषय और भाव को अधिकाधिक स्पष्ट करने के

लिये प्रत्येक छन्द का अर्थ भी साथ-साथ सुनाने की आचार्य श्री ने कृपा की। इसे लेखबद्ध भी किया गया जिसका सर्वांगीण रूप इस प्रकाशन के रूप मे पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत है।

इतिहास-प्रेमी भी इस ग्रन्थ का लाभ उठा सकें, इस दृष्टि से अन्त के परिशिष्टों में लोंकागच्छ की परम्परा और धर्मोद्धारक श्री जीवराजजी महाराज, श्री धर्मसिंहजी महाराज, श्री लवजी ऋषि, श्री हरजी ऋषि, श्री धर्मदासजी महाराज आदि से सम्बन्वित विभिन्न शाखाओं का विवरण भी दे दिया गया है।

विद्वानों और शोधार्थियो की सुविधा के लिए अनुक्रमणिका भी दे दी गई है। इससे इस कृति में आये हुए किन्ही भी आचार्य, मुनि, राजा, श्रावक, ग्राम, नगर, प्रान्त, गण, गच्छ, शाखा, वंश, सूत्र, ग्रन्थ आदि के सम्बन्ध में सुगमता व शीघ्रता से तत्काल ज्ञातव्य प्राप्त किया जा सकता है। अन्त में शुद्धिपत्र भी जोड़ दिया गया है। पाठकों से निवेदन है कि वे अशुद्धियों को सुधार कर पढ़ें।

इस ग्रन्थ के लेखन में धर्म सागरीय तपागच्छ पट्टावली, हस्तलिखित स्थानकवासी पट्टावली, प्रभु वीर पट्टावली और पट्टावली समुच्चय आदि ग्रन्थों का सहारा लिया गया है। प्राचीन हस्तलिखित पत्रों का एव आचार्य श्री ने स्वयं अपनी धारणा का भी इसमें उपयोग किया है। उन समस्त ग्रन्थकारों एवं ग्रन्थों को उपलब्ध कराने वाले सज्जनों एवं ज्ञान-भंडारों के प्रति हम हृदय से कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

इसके सम्पादन में हमें श्री गजसिंहजी राठोड़, जैन न्यायतीर्थ का और अनुक्रमणिका तैयार करने में श्रीमती शान्ता भानावत, एम० ए० का अमूल्य सहयोग प्राप्त हुआ है, तदर्थ हम उनके आभारी हैं। इसी तरह ज्ञात-अज्ञात जिन महानुभावों का सहयोग हमें इसमें मिला है, उन सभी के प्रति हम कृतज्ञ हैं।

आशा है, यह ऐतिहासिक काव्यकृति पाठकों को न केवल जैन परम्परा का ज्ञान करायेगी, वरन् उन्हें इतिहास के प्रति अधिक सजग और अनुरक्त भी बनायेगी।

पूर्ण सावधानी रखते हुए भी ग्रन्थ के लेखन में अथवा मुद्रण में कही कोई ऐतिहासिक त्रुटि या स्खलना रह गई हो या कहीं कुछ किसी को अप्रिय लेख आ गया हो तो सत्य के अन्वेषक पाठक उसके लिये हमें क्षमा करते हुए हंस की नीर-क्षीर विवेक दृष्टि से काम लेंगे एवं आवश्यक संशोधन एवं त्रुटि के बारे में हमें सूचित करने की कृपा करेंगे ताकि अगली आवृत्ति में हम उनका उचित निराकरण कर सकें।

—सोहनमल कोठारी
मंत्री
जैन इतिहास समिति, जयपुर।

लाल भवन, जयपुर
१-१-१९७१

सम्पादकीय

सत सत्पथ के केवल पथिक ही नहीं, अपितु संसार को सत्पथ प्रदर्शित करने वाले प्रकाश-स्तम्भ और भव-सागर के तैराक होने के साथ-साथ तारक भी होते हैं। युग-युगान्तरों से मानव समाज संत समाज का ऋणी रहता आया है, आज भी है और आने वाले कल से लेकर अनन्त काल के पश्चात आने वाले कल्पनातीत अनागत तक वह सदा-सर्वदा निष्कारण करुणाकर, करुणावतार संतों का ऋणी रहेगा। क्योंकि असंख्य अभिशापों से ओतप्रोत इस संसार में केवल एक संत समाज ही वास्तव में वरदान स्वरूप है।

संतों के अमृतमय अनमोल अमर बोल वसुंधरा के कण-कण को गुंजाते हुए, अनन्त आकाश को प्रतिध्वनित करते हुए संतप्त मानव-मन को आत्मानुभूति के अथाह आनन्द-सागर की सुखद हिलोरों के झूलों पर झुला कर अनिर्वचनीय शान्ति प्रदान करते हैं, यथा

सुवण्ण रूवस्स हु पव्वया भवे, सिया हु कैलाससमा असंखया।
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि, इच्छा हु आगाससमा अणंतया॥

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य॥

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्॥

क्रोध, लोभ, मद, मोह, ईर्ष्या और द्वेष से जलती हुई जाज्वल्यमान जगत की भट्टी में दग्ध होते हुए मानव समाज के कर्णरन्ध्रों में यदि संतों के उपर्युक्त वचनामृत नहीं पहुँचते तो आज मानव समाज की कितनी भीषण, दारुण एवं दयनीय स्थिति होती, इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

ऐसी स्थिति में यह निर्विवाद सत्य है कि सन्त मानव-समाज के सच्चे शुभ-चिंतक, सुहृद, परम उपकारी, पथ प्रदर्शक और कर्णधार हैं। इनके पद-चिन्ह और पतित पावन जीवन चरित दिग्भ्रान्त मानव के लिए प्रेरणा स्रोत और ध्रुव तारे की तरह दिशासूचक ज्योतिपुञ्ज प्रदीप हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में आज के युग के एक महान सन्त पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज साहब द्वारा आचार्यों के पावन चरित्र बड़े भाव भरे पद्यों में अत्यन्त मनोहारी लोक-शैली के माध्यम से प्रस्तुत किये गये है।

आचार्य श्री ने भगवान् महावीर के प्रथम पट्टधर आर्य सुधर्मा स्वामी से प्रारम्भ कर आज तक के युग प्रवर्तक आचार्यों के अथाह चरित्रों का इस छोटी सी पुस्तक में संक्षिप्त--सजीव चित्रण कर वास्तव में सागर को गागर में भर देने की अगाध्य कहावत को चरितार्थ कर दिया है।

पूज्य श्री की वाणी व लेखनी से प्रकट हुआ प्रत्येक शब्द, प्रत्येक भाव वस्तुतः अमर संतवाणी है, जिसके सम्पादन की कोई आवश्यकता नही रहती अतः इस सम्पादन कार्य को मै अपने लिये पूज्य श्री की असीम कृपा का प्रसाद ही समझता हूँ।

गुड़ के प्रथम रसास्वादन के आनन्द को अभिव्यंजना करने मे असमर्थ गूंगे व्यक्ति द्वारा अपने प्रियजनों के समक्ष गुड़ प्रस्तुत करते समय जो उसकी स्थिति होती है, ठीक वही स्थिति मेरी भी अपने इस प्रथम सम्पादित कृति को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में हो रही है।

भक्तिपरक होने के कारण इस पुस्तक का बहुत बड़ा आध्यात्मिक महत्त्व तो है ही परन्तु ढाई हजार वर्ष की आचार्य परम्परा के शृंखलाबद्ध संक्षिप्त इतिहास का आचार्य श्री ने बड़ी कुशलता के साथ इसमें आलेख किया है, अतः इस काव्य का ऐतिहासिक दृष्टि से भी बड़ा महत्व है। मैने इस पुस्तक का अनेक बार लय के साथ पाठ किया है और मेरी यह निश्चित धारणा है कि यह काव्य स्वल्प समय में ही जन-जन का कण्ठाभरण बन जायगा।

अन्त में यह निवेदन करना चाहूंगा कि यह पुस्तक मुझे जितनी अधिक प्रिय है उतना अधिक समय, एक अन्य कार्य में अत्यधिक व्यस्त रहने के कारण, इसकी शुद्ध छपाई आदि की ओर मै विशेष ध्यान नहीं दे सका हूँ अतः इसके सम्पादन में रही त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

—गजसिंह राठोड़

अनुक्रम

●

जैन आचार्य चरितावली १-१२१

परिशिष्ट

१. लोंकागच्छ की परम्परा १२२-१३१

२. श्री जीवराजजी म० और सम्बद्ध शाखाएँ १३१-१३५

३. ,, धर्मसिंहजी म० ,, ,, ,, १३५-१३९

४. ,, लवजी ऋषि ,, ,, ,, १३९-१४३

५. ,, हरजी ऋषि ,, ,, ,, १४३-१४५

६. ,, धर्मदासजी म० ,, ,, ,, १४५-१५४

७. ,, धन्नाजी म० का परिवार १५५-१६१

अनुक्रमणिका

(क) आचार्य, मुनि, राजा, श्रावकादि १६२-१७२

(ख) ग्राम, नगर, प्रान्तादि १७३-१७५

(ग) गण, गच्छ, शाखा, वंशादि १७५-१७७

(घ) सूत्र-ग्रन्थादि १७७-१७७

शुद्धि-पत्र १७८-१७९

जैन-आचार्य चरितावली

॥ राधे० ॥

शासनपति को वंदन करके, गुरु को शीश झुकाता हूं ।
ज्योतिर्धर आचार्य प्रवर की, गुणगाथा मैं गाता हूं ॥१॥

अर्थ:—सर्व प्रथम मंगलनिधान शासनपति भगवान् महावीर को वंदन कर, श्री ज्ञानदाता गुरुदेव को नमस्कार करता हूं । फिर वीरशासन के ज्योतिर्धर आचार्य प्रवर का संक्षिप्त गुणगान करता हूं ॥१॥

॥ लावणी ॥

यह जिन शासन की महिमा जग में भारी,
लेकर शरण तिरे अनन्त नर नारी ॥ टेर ॥
चतुर्थ काल में अन्त वीर शिव पाये,
अर्द्ध भरत में आंतर तम तब छाये ।
ज्योतिर्धरों ने धर्म प्रदीप जलाया,
भवजीवों को सत्यमार्ग बतलाया ॥
कृतज्ञ मन से जायें हम बलिहारी ॥ लेकर० ॥ १ ॥

अर्थ:—चतुर्थ काल के अंत में जब भगवान् महावीर मोक्ष पधारे, तब दक्षिणार्द्ध भरत में अज्ञान का अंधकार छा गया । उस समय सुधर्मा आदि ज्योतिर्धर आचार्यों ने धर्म का प्रदीप जला कर भव्य जीवों को सत्य का मार्ग बतलाया । हम सब कृतज्ञ भाव से बार-बार उनकी बलिहारी जाते हैं । उनका यह महान् उपकार अविस्मरणीय है ॥१॥

॥ लावणी ॥

युग प्रधान सन्तों की जीवनगाथा,

उनके अनुगामी को न्हायें (नमावें) माथा।
राग-अंध हो भूला जन निज गुण को,
धर्म-कथा जागृत करती जन-मन को।
सुनो ध्यान से सत्य कथा हितकारी ॥ लेकर० ॥२॥

अर्थ:—महावीर के अनुगामी आचार्यों को सिर नमा कर उन युग प्रधान संतों की हम प्रेम से जीवनगाथा गाते हैं। रागान्ध मानव निज-गुण को भूल रहा है। धर्म कथा ही मानव के इस सोये हुए मन को जागृत करती है। वैसी स्वपरहितकारी कथा ही कल्याणार्थी को ध्यान से श्रवण करनी चाहिये ॥२॥

॥ राधे० ॥

प्रथम पट्टधर हुए सुधर्मा, जिनका यश जग छाया है।
बीस वर्ष शासन दीपा कर, शुद्ध बुद्ध कहलाया है ॥ २ ॥
छात्र पांच सौ साथ प्रव्रज्या, लेकर धर्म दिपाया है।
शास्त्रवाचना के संचालक, जग उपकार सवाया है ॥ ३ ॥
श्रमणसंघ के थे युग नेता, भिन्न कल्प भी चलते थे।
पर सब में थी एक सूत्रता, संयम जीवन जीते थे ॥ ४ ॥
तरुण विरागी एक मिला, लक्ष्मी का परम दुलारा था।
ऋषभदत्त का कुलउजियारा, आठ रमणीका प्यारा था ॥५॥

अर्थ:—आर्य सुधर्मा महावीर के प्रथम पट्टधर हुए, जिनका विमल यश समस्त संसार में फैला हुआ है। तीस वर्ष तक सामान्य मुनि-पद पर रह कर आप आचार्य पद पर आसीन हुए, और बीस वर्ष तक शासन की प्रभावना कर सिद्ध मुक्त हो गये। आपने पांच सौ छात्रों के साथ प्रव्रज्या ग्रहण कर चौदह पूर्व का ज्ञान प्राप्त किया। आज की शास्त्र-वाचना के आप ही संचालक हैं। आप श्रमणसंघ के प्रथम युग प्रधान आचार्य थे, आपके समय में जिन कल्प और स्थविरकल्प जैसे भिन्न-भिन्न कल्प भी चलते थे, फिर भी कहीं किसी में विरोध का व्यवहार दृष्टि-गोचर नहीं होता। कुछ स्वकल्याण में रत रहते थे तो दूसरे स्वकल्याण के साथ समाजहित में भी यथायोग्य योगदान दे रहे थे। सबमें एकसूत्रता थी। संयम जीवन से जीना सबको इष्ट था। एक समय उनको राजगृह में एक तरुण लक्ष्मीपुत्र

विरक्त रूप में मिला, जो श्रेष्ठीवर ऋषभदत्त का दुलारा और आठ कुल रमणियों का प्यारा था ।।५।।

।। लावणी ।।

मात पिता रमणी संग दीक्षा लीनी,
जिन शासन की महती सेवा कीनी ।
वीर प्रभु के शासन के अधिकारी,
चरम केवली हुए महाव्रत धारी ।
धन्य-धन्य योगीश्वर परउपकारी ।। लेकर० ।। ३ ।।

अर्थ:—जंबू ने माता-पिता के आग्रह से आठ उच्च कुलीन कन्याओं से शादी की । श्वसुर पक्ष की तरफ से ९९ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं का दहेज मिला । फिर भी माया में मोहित नहीं हुए । उन्होंने प्रथम मिलन की रात्रि में भोग के बदले आठों रमणियों को योग की शिक्षा दी । सोनैया चुराने को आये हुए प्रभवसिंह आदि पांच सौ चोरों को बोध दिया और प्रातःकाल आठों वधुओं और पांच सौ चोरों के साथ माता-पिता के सामने संयम अंगीकार करने की अनुमति लेने को उपस्थित हुए । सेठ ऋषभदत्त ने पुत्र का अकल्पित प्रभाव देखा तो वे भी प्रभावित हुए और जंबू के साथ दीक्षित होने को तैयार हो गये । इस प्रकार उस तरुण वैरागी ने माता पिता और रमणियों को संग लेकर पांचसौ सत्ताईस व्यक्तियों के साथ दीक्षा ग्रहण की । उसने अपने उत्कृष्ट त्याग वैराग्यपूर्ण जीवन से शासन की बड़ी सेवा की । सुधर्मा स्वामी के बाद वे शासन के उत्तराधिकारी हुए और वीर शासन के अंतिम केवली कहलाये । उन परमयोगी और महान् उपकारी आचार्य जम्बू को कोटि-कोटि प्रणाम है ।।३।।

।। लावणी ।।

द्वितीय पट्ट पर गणपति का पद पाया,
केवल पाकर शिवरमणी को ध्याया ।
केवल ज्ञानादिक दश बात बिलाई,
वर्ष चौसठे लिया मुक्तिपद पाई ।
हम सब पर उपकार किया अतिभारी ।। लेकर० ।।४।।

अर्थ:—सुधर्मा के पश्चात् जंबू ने आचार्य पद प्राप्त किया और ये

द्वितीय पट्टधर आचार्य हुए। केवलज्ञान पाकर शिवरमणी के अधिकारी हुए। आपके बाद दश बोलों का इस भारतवर्ष में विच्छेद हो गया; जो इस प्रकार है :

मणपरमोहि पुलाए, आहार खवग उवसमे कप्पे।
संजमतिग केवलमिज्जण- य जम्बुंम्मि वुच्छिन्ना ॥

अर्थात् (१) परम अवधिज्ञान, (२) मनः पर्यायज्ञान, (३) केवल ज्ञान, (४) परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म संपराय और, यथाख्यात चारित्र रूप संयम-त्रिक (५) उपशम श्रेणी, (६) क्षपक श्रेणी, (७) जिनकल्प, (८) पुलाक-लब्धि, (९) आहारक लब्धि और (१०) मोक्षगमन।

आप सोलह वर्ष गृहस्थ रहे फिर संयम लेकर बीस वर्ष सामान्य साधु और चवालीस वर्ष आचार्य पद पर रहकर कुल ८० (अस्सी) वर्ष की आयु भोग कर निर्वाण को प्राप्त हुए।

वीर निर्वाण के चौसठवें वर्ष में आपका निर्वाण हुआ। वर्तमान का आगम साहित्य आपही की महती कृपा का फल है। ॥४॥

आचार्य प्रभवा—

॥ लावणी ॥

जम्बू के पट्ट देखो प्रभवा राजे,
चोराधिप से श्रमणाधिप पद छाजे।
जम्बू की संगति का यह फल पाया,
चौर पांचसौ के संग व्रत अपनाया।
हुआ प्रभावक शासन का अधिकारी ॥ लेकर० ॥५॥

अर्थ—जंबू के बाद तीसरे पट्टधर आचार्य प्रभवा हुए। चोरनायक से श्रमणनायक के महत्त्वपूर्ण पद को प्राप्त करना, परम वैरागी जंबू की संगति का ही फल है। उन्होंने पांच सौ चोरों के साथ दीक्षाव्रत ग्रहण किया और वीर शासन के बड़े प्रभावशाली आचार्य हुए ॥५॥

॥ लावणी ॥

वित्तहारी अब दुर्मत हरने वाला,
कर्मशूर से धर्मशूर हुआ आला ।
ज्ञान क्रिया से शासन को दीपाया,
अपने पद पर पटधारी नहीं पाया,
श्रुतबल से आगे की बात विचारी ॥ लेकर० ॥६॥

अर्थ—विंध्य-नरेश का प्रिय पुत्र प्रभवसिंह जो कभी चोर के रूप में कुख्यात था, वही अब दुर्मति हरनेवाला मत हो गया, दुष्कर्मकर्त्ता धर्मनेता बन गया। उन्होंने ग्यारह वर्ष तक आचार्य पद पर रहकर ज्ञान-क्रिया से शासन को दीपाया। अन्त में अपने पद पर योग्य उत्तराधिकारी को न पाकर श्रुतज्ञान के बल से भविष्य की बात सोचने लगा ॥६॥

॥ लावणी ॥

राजगृह में शय्यभव को जाना,
प्रतिबोधन हित मुनि द्वय को भिजवाना ।
आ मुनि बोले तत्त्व न जाना भाई,
सुनकर चौंके याज्ञिक मन के मांहीं ।
कहे गुरु से सत्य बात कहो सारी ॥ लेकर० ॥७॥

अर्थ–आचार्य प्रभव ने श्रुतज्ञान में उपयोग लगाकर राजगृही के शय्यंभव भट्ट को योग्य उत्तराधिकारी समझा। फलस्वरूप उसको प्रतिबोध देने के लिये मुनियुगल को प्रेषित किया। शय्यंभव के द्वार पर पहुँच कर मुनियों ने कहा,—"हा कष्टं तत्त्वं न ज्ञात"। याज्ञिक शय्यंभव इस बात को सुनकर मन ही मन चौंका और कलाचार्य के पास जाकर पूछने लगा, "सत्य बतलाओ तत्त्व क्या है?" ॥७॥

॥ लावणी ॥

कलाचार्य भयभीत कहे सुन स्याना,
तत्त्व जिनेश्वर मार्ग रतो नहिं छाना ।
प्रभवसूरि से भेद समझकर जानो,
दुखमुक्ति का मार्ग वही पहिचानो ।
यज्ञ दिलावे स्वर्ग न भवभय हारी ॥ लेकर० ॥८॥

अर्थ —शय्यभव भट्ट की बात सुनकर कलाचार्य भयभीत हुए और बोले—"वास्तव में जिनेश्वर का मार्ग ही तत्त्व है, और उसका सही मर्म यहा विराजित प्रभवसूरि समझा सकते है। वही दुखमुक्ति का सच्चा मार्ग है। यज्ञ तो देवता की प्रसन्नता के लिये किया जाता है, उसमें दिये हुए दानादि मे शुभ कर्म का बंध होकर कभी स्वर्ग मिल सकता है। परन्तु वह भवभ्रमण को नही टाल सकता ॥८॥

॥ लावणी ॥

प्रभवसूरि के निकट आय यों बोले,
तत्त्व बताओ तो हम होंगे चेले।
भेद खोलकर गुरुवर ने समझाया,
शय्यंभव के मन का भरम मिटाया।
छोड़ सम्पदा और त्याग दी नारी ॥ लेकर० ॥९॥

अर्थ:—कलाचार्य की बात सुनकर शय्यंभव की जिज्ञासा जागृत हुई और वह आचार्य प्रभवा के चरणों मे आकर बोला—"महाराज! तत्त्व बताइये, मै आपका शिष्य बनने को तैयार हू। आचार्य ने भी भेद खोल कर धर्म का सही मार्ग समझाया, जिससे शय्यभव के मन का संशय दूर हुआ और उसने घर, दारा एवं वैभव का त्याग कर उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया ॥९॥

॥ लावणी ॥

शय्यंभव ने गुरु से ज्ञान मिलाया,
बड़े भाग से चौदह पूर्व धराया।
गुरु के पीछे शासन को संभाला,
श्रमणवर्ग भी था मोतिन की माला।
दीपे शासन वीर प्रभु का भारी ॥लेकर० ॥ १० ॥

अर्थः-आचार्य प्रभवा से दीक्षित होकर शय्यंभव ने तत्त्वातत्त्व का ज्ञान मिलाया और अहोभाग्य से चौदह पूर्व के ज्ञान का ज्ञाता बन गया। उन्होने गुरु के पीछे धर्मशासन को अच्छी तरह संभाला। उस समय के

(१) स्वर्ग कामो यजेत।

श्रमण-श्रमणी भी माला के मोती की तरह एक दूसरे से बढ़-चढ़ कर दीप्तिमान थे अतः प्रभु महावीर का शासन तेजोमय दीपता रहा ॥१०॥

॥ लावणी ॥

घर में पीछे पुत्र हुआ सुखदाई,
मनक नाम से बतलाती थी माई।
भाग्य योग से उसने सन्मति पाई,
मित्रजनों ने उसको कड़ी सुनाई।
खेल-खेल में मित्रों ने कही खारी ॥ लेकर० ॥११॥

अर्थ — शय्यंभव जब दीक्षा लेने को तैयार हुए तब उनकी पत्नी सगर्भा थी। सम्बन्धियों ने उनसे गर्भ के सम्बन्ध में पूछा, तब उसने लज्जावश कहा—"मनाक् = कुछ है।" जब कुछ समय के बाद पुत्र का जन्म हुआ तो लोग उसे 'मनक' नाम से पुकारने लगे। किसी समय बालमण्डल के साथ खेलते हुए मनक को साथियों ने खेल-खेल में यह कह डाला कि "बाप का तो पता ही नहीं है और बड़ी-बड़ी बात मारता है।" भाग्ययोग से मनक की मति बदल गई ॥११॥

॥ लावणी ॥

पूछे मात से तात कहाँ बतलाओ,
बोले जननी गुरुचरणों में जाओ।
तात तुम्हारे सयम व्रत ले चाले,
गर्भकाल से मैंने तुमको पाले।
अनुमति लेकर चला बाल सुविचारी ॥लेकर०॥ १२ ॥

अर्थः— मनक भी मित्रों की बात सुनकर खेलना-कूदना भूल गया और माँ के पास आकर पूछने लगा,—"माता मेरे पिता कौन और कहाँ हैं? माता बोली,—"बेटा तुम्हारे पिता ने तो तुम्हारे जन्म से पहले संयमव्रत ले रखा है। मैं ही गर्भकाल से तुम्हारा पालन करती आ रही हूँ। तुमको यदि दर्शन करने है तो गुरुचरणों में जाओ, वहां तुम्हारे पिता मिलेंगे। बालक मनक माता की अनुमति प्राप्त कर, पिता शय्यंभव के दर्शन को चल पड़ा ॥१२॥

॥ लावणी ॥

चंपा के स्थंडिल में दर्शन पाये,

वंदन कर मुनि से निज हाल सुनाये।
चला बाल आवास गुरु के आया,
भेद समझ गुरचरणे शीश नंवाया।
योग्य समझ गुरु ने दी सीख करारी ।। लेकर० ।।१३।।

अर्थः—मुनि शय्यभव का पता लगाते हुए ज्योंही बालक चम्पा नगरी के पास पहुंचा, जगल में ही उसको मुनि शय्यंभव के दर्शन हो गये। उसने मुनि को वंदन कर अपना हाल सुनाया और पूछने लगा कि आप मुनि शय्यंभव को जानते हों तो बतलाइये। शय्यभव ने उसको अपने साथ चलने को कहा और उपासरे में आकर गुरुचरणों में वंदन कर बालक का परिचय दिया। बालक भी पिता श्री का भेद पाकर प्रसन्न हुआ। गुरु ने उसको योग्य समझकर निम्न प्रकार से प्रतिबोध दिया।।१३।।

।। लावणी ।।

जग में आकर जिसने धर्म कमाया,
जीवन अपना उसने सफल बनाया।
बोला बालक चरणशरण में ले लो,
जन्म सफल करने की शिक्षा दे लो।
भाव सहित मुनिव्रत लिया उसने धारी।। लेकर० ।।१४।।

अःर्थ—भाई! इस संसार में अगणित जीव जन्म धारण करते और मर जाते हैं पर वास्तव में जीवन उसी का सफल है, जिसने संसार में जीवन पाकर कुछ धर्म कमाया,देवगुरु की सेवा की और स्व-पर को पापमार्ग से बचाने का प्रयत्न किया। यों तो अनन्तबार मनुष्य जन्म की सामग्री पा चुके हो। पर विषय कषाय में उलझ कर उसका लाभ नहीं उठा पाये अतः अबभी उठो और कुछ आत्म-कल्याण का साधन करलो। उपदेश को सुनकर बालक गुरु शय्यभव के चरणों में दीक्षित हो गया और प्रयत्नपूर्वक गुरुवचनों पर चलने लगा।।१४।।

।। राधे० ।।

मनक मुनि ने जन्म सुधारण,
साधन करना ठाना है।

विनय सहित शिक्षा ले गुरु से,
निज स्वरूप पहचाना है ।।५।।

अर्थ:—गुरु के सदुपदेश से दीक्षित होकर मनक मुनि ने जन्म सफल करने का निश्चय किया। उसने गुरु से सविनय शिक्षा प्राप्त की और अपने शुद्ध स्वरूप को पहचान लिया ।।५।।

गुरु का उपदेश—

।। तर्ज ख्याल ।।

गुरुदेव बतावे,
साधन समझावे मुक्तिमार्ग का ।।गुरु०।।टेर।।
खाना पीना और घूमना,
यतना से सब काम ।
विधियुत चलते पाप न लागे,
मिले मुक्ति का धाम हो ।।गुरु०।।१।।
मनक कहे गुरुदेव बताओ,
सब शास्त्रों का सार ।
अल्प आयु लख शय्यंभव ने,
किया शास्त्र उद्धार हो ।।गुरु०।।२।।
दश अध्याय पूर्व से लेकर,
रचना की तैयार ।
काल विकाल में पूर्ण किया यों,
दशवैकालिक धार हो ।।गुरु०।।३।।

अर्थ—मनक मुनि को शिक्षा देते हुए गुरु बोले, शिष्य ! पाप कर्म से बचने के लिये आवश्यक है कि खाना, पीना, घूमना, सोना और भाषण आदि सब काम यतना से किये जायं, जिससे आत्मा हल्की होकर मुक्तिमार्ग की ओर अग्रसर हो सके ।।१।।

मनक बोले, गुरुदेव ! मुझे ऐसा मार्ग बतलाओ कि मैं अल्प समय में ही अपना कल्याण कर सकूं। गुरुदेव शय्यंभव ने उसके आयुकाल का विचार किया तो मात्र छः महिने का ही आयु शेष पाया। इतने अल्पकाल में मनक मुनि ज्ञान-क्रिया का सम्यक् आराधन कर किस प्रकार अपना

कल्याण कर सकें, इस पर चिन्तन करते हुए उन्होंने चौदह पूर्व से दस अध्ययनों का उद्धरण कर अलग एक सूत्र की रचना की। संध्या समय में वह पूर्ण सम्पन्न हुआ, इसलिये इस सूत्र का नाम दशवैकालिक रखा गया ॥२॥ ॥॥

॥ लावणी ॥

वर्ष अट्ठावीस गृहजीवन में गाले,
एकादश वत्सर गुरुचरण निहाले ।
युग प्रधान पद वर्ष तेवीस संभाला,
वीर काल अट्ठाणूं सुर थये आला ।
मनक मुनि ने भी ली सेवा धारी ॥लेकर०॥१५॥

अर्थ:—वीर संवत् ७५ में प्रभवाचार्य के स्वर्गस्थ होने पर मुनि शय्यंभव आचार्य पद पर आसीन हुए, जिसका परिचय इस प्रकार है— अट्ठाईस वर्ष तक गृहस्थ जीवन में एक पंडित के रूप में रहे, और ग्यारह वर्ष तक उन्होंने आचार्य प्रभव स्वामी के पास विनयपूर्वक शिक्षा ग्रहण की। फिर उनके स्वर्गवास होने पर युग प्रधान आचार्य के पद पर आसीन होकर (२३) तेवीस वर्ष तक शासन चलाया और वीर निर्वाण अठाणवें वर्ष में समाधिपूर्वक आयुष्य पूर्ण कर स्वर्ग पधारे ॥१५॥

॥ तर्ज ख्याल ॥

मनक शिष्य के साधनहित वे,
पूर्ण लगाते ध्यान ।
मनक मुनि ने छः महिने में,
किया आतम कल्याण हो ॥गुरु०॥४॥

अर्थ:—आचार्य शय्यंभव ने मनक मुनि के आत्मकल्याणार्थ पूरी तत्परता से ध्यान दिया और मनक मुनि ने भी गुरु के निर्देशानुसार चल कर छः मास के अल्प समय में ही अपना कल्याण कर लिया ॥४॥

॥ मू० ॥

मनक भिक्षु के स्वर्ग गमन से, नयन भराये आज ।
यशोभद्र ने पूछा कारण, भेद बताया खास हो ॥गुरु०॥५॥

अर्थ :—छः मास के बाद जब मनक मुनि ने कालधर्म प्राप्त किया, तब शय्यंभव सूरि के नयनों में अश्रु बह आये। यशोभद्र आदि शिष्यों को यह देख कर आश्चर्य हुआ। उन्होंने गुरुदेव से विज्ञप्ति कर इसका कारण पूछा, प्रत्युत्तर में शय्यंभव ने सारी हकीकत बतलाई जिसे सुनकर शिष्य-गण बोले—महाराज! आपने आज तक हमें यह नहीं बतलाया कि आपका संबंध लघु मुनि के साथ पिता-पुत्र रूप से है, अन्यथा हम भी कुछ सेवा कर सकते। गुरु ने कहा, आप मेरा पुत्र जानते तो उससे सेवा नहीं कराते और वह भी अपना कर्त्तव्य भूल जाता। मैंने मनक मुनि के लिये दशवैकालिक सूत्र का पूर्वों से उद्धरण किया है, जिसे अब अलग संग्रह रूप से समाप्त करना चाहता हूँ ।।५।।

।। मू० ।।

दस अध्याय संघ आग्रह थी, पीछे नहीं समाये।
धन्य किया उपकार संघ पर, बार बार बलि जायें हो ।।गुरु०।।६।।

अर्थ :—संघ और मुनि यशोभद्र के आग्रह से उन्होंने दशवैकालिक के अध्ययनों को पूर्वों में समाप्त नहीं किये। वह आज भी श्रमण श्रमणी-वर्ग के लिये आचार शिक्षा का स्पष्ट मार्गदर्शन कर रहा है। उन्होंने संघ पर बड़ा उपकार किया, अतः वे हमारे लिये चिरस्मरणीय हैं। ।।६।।

मुनि यशोभद्र

।। लावणी ।।

पाटलीपुर का यशोभद्र था नामी,
सुन कर के उपदेश हुआ शिवकामी।
भर तरुणाई में संयम स्वीकारा,
चवदह वत्सर ज्ञान गुरू से धारा।
गुरु आज्ञा पालन की मन में धारी ।।लेकर।।१६।।

अर्थ :—शय्यंभव के पश्चात् आचार्य यशोभद्र हुए। ये पाटलीपुर के प्रसिद्ध ब्राह्मण पंडित थे। शय्यंभव सूरि का उपदेश पाकर वे विरक्त हो गये और बावीस वर्ष की पूर्ण यौवन अवस्था में संयम धारण कर चौदह

वर्ष तक गुरुचरणों में ज्ञानाराधन करते रहे । गुरुआज्ञा पालन ही उन्होंने अपना मुख्य व्रत मान रखा था ।।१६।।

।। लावणी ।।

वीर काल गये वर्ष अट्ठाणूं पीछे,
शय्यंभव किया काल सुनो अब नीचे ।
यशोभद्र ने गुरू से ज्ञान मिलाया,
योग्य समझ उनको शासन संभलाया ।
रहे वर्ष पच्चास संघ अधिकारी ।।लेकर।।१७।।

अर्थ :—वीर निर्वाण ६८ की साल जब आचार्य शय्यंभव का स्वर्गवास हो गया, तो उनके प्रमुख शिष्य यशोभद्र ने शासन का भार संभाला । उन्होंने विनयपूर्वक गुरु से ज्ञान मिलाया, अतः संघ ने भी योग्य समझकर आपको ही उत्तराधिकारी नियुक्त किया । आप पचास वर्ष तक कुशलता से चतुर्विध सघ का सचालन करते रहे ।।१७।।

।। लावणी ।।

यशोभद्र मुनि शासन को दीपाते,
चरणों में पंडितजन बहु शोभाते ।
वीर काल शत पर अठचालिस जानो,
हुए स्वर्ग के देव महर्द्धिक मानो ।
शिष्य हुए चालीस महाव्रत धारी ।।लेकर।।१८।।

अर्थ :—आचार्य यशोभद्र भी चौदह पूर्व के ज्ञाता थे, उनकी विद्वत्ता से प्रभावित हो बड़े-बड़े पंडित उनके चरणों में रहते । पचास वर्ष के दीर्घकालीन संयम का पालन कर इन्होंने जिन शासन को दीपाया और वीर सवत् १४८ में स्वर्गवासी होकर महर्द्धिक देव हुए । उनके सभूतिविजय और भद्रबाहु जैसे चालीस शिष्य थे ।।१८।।

॥ लावणी ॥

संभूतिविजय भी सेवा में चल आये,
सुन कर के उपदेश ज्ञान मन भाये।
चौदहपूर्वी गुरुपद के अधिकारी,
अर्द्ध शती कम दोय (४८) रहे व्रत धारी।
पूर्ण आयु नवति (९०) वत्सर था भारी ॥लेकर॥१९॥

अर्थ:—महिमा सुनकर पंडित सम्भूतिविजय भी यशोभद्र की सेवा में आये और उनके उपदेश सुन कर दीक्षित हो गये। चौदह पूर्व के ज्ञाता बनकर ये भी यशोभद्र के उत्तराधिकारी हुए। ये आठ वर्ष तक आचार्य पद पर रहे और कुल ४८ वर्ष तक संयम का पालन कर ९० वर्ष की पूर्ण आयु में स्वर्गवासी हुए ॥१९॥।

॥ लावणी ॥

स्थूलभद्र जंबू आदिक थ बारे,
स्थविर शिष्य जिन शासन सेवा धारे।
आठ वर्ष गणि पद रह स्वर्ग सिधारे,
जगप्रसिद्ध फिर भद्रबाहु पद धारे।
एक तंत्र शासन चलता सुखकारी ॥लेकर॥२०॥

अर्थ:—आपके नन्दनभद्र, उपनन्द, तीसभद्र, गणिभद्र, पूर्णभद्र, स्थूलभद्र, ऋजुमती, जम्बू, दीर्घभद्र, पाण्डुभद्र आदि बारह प्रमुख शिष्यों में स्थूलभद्र, जंबू आदि मुख्य थे। इनमें कई शिष्य स्थविर और शासन की सेवा करने में कुशल थे। आठ वर्ष तक आचार्य पद पर रहने के पश्चात् इनके पट्ट पर जगत्प्रसिद्ध लघु गुरुभ्राता आर्य भद्रबाहु विराजे। इस समय तक चतुर्विध संघ में एकतंत्र शासन चलता रहा। यह श्लाघनीय बात है ॥२०॥

भद्रबाहु का परिचय और भविष्य का कथन

॥ लावणी ॥

पुत्रजन्म की देन बधाई आवे,

भद्रबाहु नहिं भूप भवन में जावे ।
मंत्री ने गुरु को यह अर्ज सुनाई,
कहा साथ ही जायेंगे हम भाई ।
सात दिवस की अल्प आयु दुखकारी २ ।।लेकर।।२१।।

अर्थ:—प्रतिष्ठानपुर के प्राचीन गोत्रीय ब्राह्मण विद्वान् भद्रबाहु ने भी आचार्य यशोभद्र के उपदेश से प्रभावित होकर उनके पास दीक्षा ग्रहण की और गुरु सेवा में रहकर चौदह पूर्व का ज्ञान संपादन किया। योग्य देख कर गुरु ने उनको आचार्यपद प्रदान किया। एक समय की बात है कि नंद राजा को लम्बे समय से एक पुत्र की प्राप्ति हुई अतः सब लोग बधाई देने आये परन्तु मुनि भद्रबाहु नही आये। विरोधियों को इस कारण से मुनि भद्रबाहु के विरुद्ध बात बनाने का मौका मिलेगा, यह देख मत्री शकडाल ने गुरु को निवेदन किया तो उत्तर मिला कि कुछ ही दिनों में दूसरा प्रसंग आने वाला है अतः साथ ही जाना ठीक रहेगा। बालक की आयु मात्र सात दिन की हो ज्ञात होती है। वराहमिहिर ने सौ वर्ष की आयु बतलाई थी जब कि भद्रबाहु ने सात दिन के बाद बिडाल के सयोग से बालक की मृत्यु होनी बतलाई। वास्तव में उनकी बात सही निकली और राजा नन्द उनका भक्त बन गया ।।२१।।

।। लावणी ।।

भद्रबाहु थे जिन शासन में नामी,
निमित्त बोले शासन के हित कामी।
व्यंतर ने पुर में उत्पात मचाया,
स्तोत्र बना कर सबका कष्ट मिटाया ।।
शास्त्रों पर निर्युक्ति की विस्तारी ।।लेकर।।२२।।

अर्थ:—भद्रबाहु चौदहपूर्व के अतिरिक्त निमित्तज्ञान के भी ज्ञाता थे, उन्होंने शासनहित के लिये निमित्त ज्ञान का प्रयोग किया। वराहमिहिर अपनी बात के मिथ्या होने से बहुत दुखी हुआ और आर्त्तध्यान में मर कर वह, व्यतर योनि में उत्पन्न होगया तथा वैर का बदला लेने हेतु वह नगर में उत्पात मचाने लगा। संघ ने उपद्रव से चिंतित हो कर भद्रबाहु से निवेदन किया। इस पर आचार्य ने "उवसग्गहर स्तोत्र" की रचना की

और नगर का संकट दूर किया। भद्रबाहु कृत निर्युक्तियां भी मिलती हैं। इतिहासज्ञों की राय में निमित्तज्ञानी भद्रबाहु और निर्युक्तिकार भद्रबाहु भिन्न-भिन्न माने गये हैं ॥२२॥

॥ लावणी ॥

द्वादश वत्सर दुष्काली जब आई,
साधकगण को भिक्षा की कठिनाई।
फिर सुकाल में श्रमण सभा भरवाई,
श्रुतरक्षा की लगन रही मन छाई।
करी वाचना अंग इग्यारह धारी ॥लेकर०॥२३॥

अर्थ:—जिस समय मगध में बारह वर्ष लंबी दुष्काली पड़ी, उस भीषण दुष्काली में त्यागी श्रमण-श्रमणियों को भिक्षा दुर्लभ हो गई। भद्रबाहु उस समय नैपाल गये हुए थे। पीछे प्रमुख संतों के नेतृत्व में सुकाल के समय पटना में शास्त्रवाचना हेतु श्रमणों की एक परिषद भरी गई। सब के मन में श्रुत-रक्षा की प्रबल भावना होने से वाचना में ग्यारह अंगों के पाठ स्थिर किये गये। जिनको जो अभ्यास था उसे मिलाकर पाठों का संकलन किया गया। यही प्रथम वाचना, 'पाटलीपुत्र वाचना" कही जाती है ॥२३॥

॥ लावणी ॥

दृष्टिवाद के ज्ञाता नहिं कोई उनमें,
भद्रबाहु नैपाल गये साधन में।
आगम रक्षा हित संदेश पठाया,
युगल साधु जा कर संदेश सुनाया।
महाप्राण की मैंने की तैयारी ॥ लेकर० ॥२४॥

अर्थ:—उपस्थित श्रमणों में कोई दृष्टिवाद का ज्ञाता नहीं था, क्योंकि भद्रबाहु महाप्राण ध्यान के साधन हेतु नैपाल गये हुए थे अतः दृष्टिवाद श्रुत का संरक्षण कैसे किया जाय? संघ ने भद्रबाहु को संदेश भेजकर बुलवाने का निर्णय किया। आगम-रक्षा के लिये संघ ने दो मुनियों के साथ उनके पास संदेश भेजा। भद्रबाहु ने मुनियों द्वारा संघ का संदेश

सुनकर कहा, मैंने महाप्राण ध्यान की साधना आरंभ कर दी है, फलस्वरूप इस समय मैं आने में असमर्थ हूँ ॥२४॥

॥ लावणी ॥

सुनकर उत्तर संघ रोष में आया,
मुनियुग को फिर आज्ञा दे भिजवाया।
महामुनि ने कहा वाचना दूंगा,
संघ कार्य कर पीछे ध्यान धरूंगा।
अनुग्रह कर दे दी आज्ञा हितकारी ॥लेकर०॥२५॥

अर्थ :—मुनियों द्वारा भद्रबाहु का उत्तर सुन कर संघ के मन में रोष भर आया। संघ ने पुनः मुनियों को भेजा और आदेश देते हुए पुछवाया कि संघ की आज्ञा न मानने का प्रायश्चित क्या होगा? महामुनि भद्रबाहु ने उत्तर में कहा कि आज्ञा न मानने पर संघ को बाहर करने का अधिकार है। मुझे आज्ञा शिरोधार्य है पर कोई मुनि यहां आवे तो मैं वाचना दे सकूंगा। वाचना का कार्य पूर्ण कर पीछे साधना करूंगा। अनुग्रह कर संघ मुझे आज्ञा प्रदान करे तो हितकर है। भद्रबाहु ने प्रतिदिन सात वाचना देने का निर्णय किया ॥२५॥

॥ लावणी ॥

स्थूलभद्र को योग्य ज्ञान के माना,
श्रमण अन्य (पंचशत) भी जिज्ञासु थे नाना।
वे शिक्षा लेने भद्रबाहु पै आये,
अन्य मुनी चंचल मन नहिं ठहराये।
स्थूलभद्र ने तन मन सेवा धारी ॥लेकर०॥२६॥

अर्थ :—भद्रबाहु का हार्दिक विचार समझ कर संघ ने यही उचित समझा कि उनकी भी साधना चलती रहे और संघ का कार्य भी होता रहे, यह अच्छा है। स्थूलभद्र ज्ञानप्राप्ति के लिये योग्य हैं, अतः उन्हें भद्रबाहु के पास भेज कर दृष्टिवाद-श्रुत का संरक्षण किया जाय। संघ ने स्थूलभद्र के साथ अन्य पांच सौ जिज्ञासु मुनियों को वहां शिक्षणार्थ प्रेषित किया किन्तु जब भद्रबाहु ने वाचना देना आरंभ किया तो अन्य मुनि अधिक

समय तक ठहर नहीं सके । केवल स्थूलभद्र ही तन-मन लगाकर सेवा में डटे रहे ।।२६।।

|| लावणी ||

पूर्ण सीख दशपूर्वी विद्या पाई,
दर्शनहित यक्षादि आर्यिका आई ।
भगिनी को विद्या का परिचय देने,
विद्या का परिचय भगिनी को करवाने,
गुहा द्वार हरि रूप विराजे छाने ।
सती देख गणिवर से आय पुकारी ।।लेकर।।२७।।

अर्थ:— स्थूलभद्र ने अविचल निष्ठा और लगन से अध्ययन किया । जब दशम पूर्व का अध्ययन समाप्त हुआ, एवं स्थूलभद्र के अभ्यास की सौरभ फैली तो उनके संसार पक्ष की भगिनी यक्षा आदि आर्यिकाएं दर्शन की उत्कण्ठा लिये आईं । आचार्य से पूछने पर मालूम हुआ कि स्थूलभद्र मुनि एकांत में अभ्यास कर रहे हैं । आज्ञा लेकर वे वहां दर्शन को गईं । उस समय स्थूलभद्र के मन में भगिनी साध्वी को अपनी विद्या का परिचय देने का कौतूहल जाग उठा और वे सिंह का रूप बनाकर गुहा द्वार पर विराज गये । साध्वी सिंह रूप को देख कर चौंकी और आकर आचार्य को निवेदन किया ।।२७।।

|| राधे० ||

भद्रबाहु ने मर्म समझ कर, शिक्षण देना बंद किया ।
अति आग्रह और संघ विनय से मूल मात्र का ज्ञान दिया ।।६।।

अर्थ:— भद्रबाहु ने जब यह मर्म समझा तब उनको आश्चर्य हुआ कि स्थूलभद्र जैसे मुनि भी इस ज्ञान को नहीं पचा सके तब औरों का क्या होगा ? उन्होंने आगे शिक्षण देना बन्द कर दिया । संघ के अति आग्रह और स्थूलभद्र की प्रार्थना पर आगे के पूर्वो का मात्र मूल पाठ सिखाया ।।६।।

|| लावणी ||

विनयशील श्रावक नहिं पक्ष बंधाया,

शासनहित में सबका योग सवाया ।
स्थूलभद्र ने भी आज्ञा स्वीकारी,
धन्य-धन्य ऐसे मुनि की बलिहारी ।
दीपे शासन अद्‌भुत जोत करारी ।।लेकर०।।२८।।

अर्थः—विनयशील श्रावक किसी के पक्ष में नहीं पडे । और सबने शासनहित में अपना बराबर योग दिया । स्थूलभद्र ने भी अपनी भूल के साथ महर्ष आचार्य की आज्ञा स्वीकार की। धन्य है ऐसे मुनियों को, जिनके विनय एवं विवेक से शासन अखंडित रह सका । ऐसे ही आत्मार्थी संतों से जिन शासन की ज्योति दैदीप्यमान रहती है ।।२८।।

।। लावणी:।।

सौ पर सित्तर वीर काल जब आया,
भद्रबाहु मुनिराज स्वर्ग पद पाया ।
पैंतालीस गृहवास सप्तदश मुनिता,
चवदह वत्सर रहे संघ के नेता ।
स्थूलभद्र आचार्य हुए गुणधारी ।। लेकर० ।।२६।।

अर्थः—वीर सं० १७० के वर्ष भद्रबाहु स्वामी स्वर्ग पधारे। ये पैंतालीस वर्ष गृहस्थ दशा में रहे, सत्रह वर्ष सामान्य साधु रूप से और चौदह वर्ष युग प्रधान आचार्य रूप से संघ का संचालन करते रहे । इनके बाद महागुणवान् मुनि स्थूलभद्र आचार्यपद पर आसीन हुए ।।२६।।

।। लावणी ।।

तीस वर्ष गृह रह के मुनिपद धारा,
चौबीस वत्सर साधन कर मन मारा ।
वर्ष पैंतालीस गणनायक रहे भारी,
पूर्ण आयु निन्नाणु वर्ष की पारी ।
दो सौ पन्द्रह सुर पदवी लही प्यारी ।। लेकर० ।।३०।।

अर्थः—स्थूलभद्र मुनि तीस वर्ष घर में रहे, चौबीस वर्ष तक सामान्य साधु रूप से साधना कर उन्होंने मनोविजय किया और फिर पैंतालीस वर्ष युग प्रधान आचार्य के रूप में शासन की सेवा की। इन्होंने पूर्ण आयु

निन्नाणवें वर्ष की पाई। वीर संवत् दो सौ पंद्रह में आप सुर-पद के अधिकारी हुए ॥३०॥

॥ लावणी ॥

वीरकाल दो सौ चवदह जब आया,
अव्यक्तवादी निन्हव तब कहलाया।
बलभद्र राय ने दूत भेज बुलवाये,
हस्ति-कटक मर्दन से बोध कराये।
लज्जित हो मुनि ने ली भूल सुधारी ॥ लेकर० ॥३१॥

अर्थः—वीर निर्वाण संवत् दो सौ चवदह की साल आषाढाचार्य के शिष्यों मे अव्यक्तवादी निन्हव हुआ। राजा बलभद्र ने जब उनको नगर के उपवन में आये जाना तो दूत भेज कर बुलवाया और हाथी के पैरों के नीचे मर्दन करने का आदेश दिया। साधु बोले—"अरे श्रावक! तुम साधुओं के साथ अभद्र व्यवहार कैसे कर रहे हो?" राजा ने कहा—"महाराज! न मालूम तुम साधु हो या साधु के वेष में चोर हो। तुम्हारे मत से साधु-असाधु का सही निश्चय नहीं होता। साधुओं ने लज्जित हो अपनी भूल सुधार ली। वे फिर मूल मार्ग में स्थिर हुए और परस्पर वंदन-व्यवहार करने लगे।३१

॥ लावणी ॥

आर्य महागिरि सुहस्ती मुनि राजे,
स्थूलभद्र के पट्ट गणी पद छाजे।
महागिरि जिनकल्प धर्म आराधे,
सुहस्ती भी विनय भाव नित साधे।
संप्रति को हुआ बोध देख व्रतधारी ॥ लेकर० ॥३२॥

अर्थः—आचार्य स्थूलभद्र के पट्ट पर आर्य महागिरि और सुहस्ती विराजमान हुए। ये दोनों स्थूलभद्र के शिष्य होने से गुरुभाई थे। स्थूलभद्र के पश्चात् आर्य महागिरि आचार्य हुए। (ये तीस वर्ष तक घर में रहे, चालीस वर्ष सामान्य मुनिपद पर साधना करके फिर आचार्य हुए, तीस वर्ष आचार्य पद से शासन की सेवा कर सौ वर्ष की आयु में स्वर्ग के अधिकारी बने)। आचार्य महागिरि मुख्य रूप से साधनाप्रिय थे अतः अनेकों

भव्यजनों को दीक्षित कर अन्त में इनकी इच्छा कठोर साधना की हुई। जिन कल्प का विच्छेद होने पर भी वे गच्छ में रह कर एकल विहार की साधना करने लगे। वे वाचना मात्र करते, और गच्छ की शेष व्यवस्था आर्य सुहस्ती संभालते। सुहस्ती विद्वान् और योग्य होकर भी महागिरि का पूर्ण सम्मान रखते थे। कहा जाता है कि सुहस्ती को देख कर संप्रति राजा को बोध हुआ और वह उनकी प्रेम से सेवा करने लगा। इसी बात को आगे पद्य में इस प्रकार कहा गया है ।। ३२ ।।

।। लावणी ।।

स्थूलभद्र के पट्ट (पर) महागिरि राजे,
चरणसाधना जिनकल्पिक सम साझे ।
आर्य सुहस्ती संप्रति के मन भाये,
सुभट भेज कर धर्म प्रचार कराये ।
दोनो प्रतिभाशील धर्मविस्तारी । लेकर० ।। ३३ ।।

अर्थः—स्थूलभद्र के पीछे आर्य महागिरि आचार्य पद पर आसीन हुए और जिनकल्प के समान आचार पालने लगे। आर्य सुहस्ती ने जब संप्रति को उपदेश दे कर शासन सेवा में प्रेरित किया तब उसने अनार्य प्रदेश में भी सुभट भेज कर जैन धर्म का प्रचार करवाया। कहा जाता है कि सुभटों ने साधु वेष में जा कर लोगों को साधु धर्म के आचार से परिचित किया। दोनों आचार्य प्रतिभाशाली थे, इन्होंने शासन की बड़ी सेवा की ।। ३३ ।।

।।लावणी।।

वीरकाल दो बीस भ्रान्ति इक छाई,
महागिरि का पौत्र अश्वमित्र ताई ।
पूर्व पाठ में उसका मन बदलाया,
नय दृष्टि पाकर भी नहिं पलटाया ।
गुरु ने भी तब प्रकट बात कही सारी ।। लेकर० ।।३४।।

अर्थः - वीर संवत् दो सौ बीस के समय महागिरि के पौत्र अश्वमित्र को भ्रान्ति हो गई। पूर्व की वाचना करते हुए उसका मन बदला और गुरु

द्वारा नये दृष्टि समझाने पर भी समाधान नहीं हुआ। तब गुरु ने संघ के समक्ष इस बात को प्रकट किया, और वह निन्हव समझा जाने लगा ।।३४।।

।।लावणी।।

कंपिलपुर में विचरत जब वह आया,
मुंकपाल ने पकड़ मारना चहाया।
जाना हमने तुम श्रावक हो प्रभु के,
बोले रक्षक साधु थे वे विभु के।
संबोधित हो बने सुदृष्टीधारी ।। लेकर० ।।३५।।

अर्थः-अश्वमित्र आदि मुनि एक समय विचरते हुए कंपिलपुर पहुँचे। वहा का मुंकपाल-चुंगीवाला, जिन शासन का भक्त था। अश्वमित्र के श्रद्धा-परिवर्तन का हाल जानकर उसने सोचा, इन मुनियों को किसी प्रकार से बोध देकर मार्गारूढ़ करना चाहिये। उसने एक युक्ति निकाली और सेवक पुरुषों को आदेश देकर साधुओं को हस्तिकटक-मर्दन से शिक्षा देना चाहा। साधु यह देख कर बोले, "भाई! हम तो तुमको श्रावक समझते थे। तुम साधुओं के साथ ऐसा व्यवहार कैसे करते हो?" रक्षक बोला-'महाराज! पता नहीं, तुम लोग साधु के वेश में कोई गुप्तचर हो। रक्षक की बात से साधु समझ गये, उनको अपनी भूल मालूम हुई और वे पुनः जिन-मार्ग पर स्थिर हो गये ।।३५।।

।।लावणी।।

पौत्र दूसरा गंग नाम से जानो,
आर्य महागिरि दादागुरु पहचानो।
उलुकातीर नगर किया वर्षा वासो,
गुरुदर्शन को गये मार्ग वहि मासो।
नीचे शीतल शिर पै ताप करारी ।। लेकर० ।।३६।।

अर्थः- महागिरि का दूसरा पौत्र-शिष्य गंग मुनि था। आर्य महागिरि उसके दादा गुरु थे। गुरु शिष्य ने उलूकातीर नगर में चातुर्मास किया था। नगर और गाँव के बीच नदी थी। कार्तिकी चातुर्मासी पर क्षमापना

करने शिष्य गुरु के पास गया । उस समय नदी में से जाने के कारण उसको नीचे से ठंडा और ऊपर से उष्णताप का वेदन हो रहा था ।।३६।।

।।लावणी।।

एक समय दो वेदन देख विचारा,
क्रिया दोय नहिं बाधक मन में धारा ।
समय सूक्ष्म उपयोग भेद किम जाने,
पद्मपत्र शतदल भेदन सम जाने ।
ज्ञानी के वच श्रद्धा ली मन धारी ।। लेकर० ।।३६।।

अर्थः—गंग मुनि को एक समय में दो वेदना देख कर मन से विचार हुआ कि एक समय में दो वेदन नहीं होने का सिद्धान्त ठीक नहीं । मुनि ने समय की सूक्ष्मता का विचार नहीं किया । कमल के सहस्र पत्र एक साथ भेदन करने पर भी वस्तुतः एक के बाद एक कमल का भेदन भिन्न-भिन्न समय में होता है । ऐसे उष्ण वेदना के समय शीत का और शीत के समय उष्ण वेदना का उपयोग नहीं होता । एक समय में एक ही उपयोग होता है, दो नहीं । क्योंकि समय सूक्ष्म है । अतः ज्ञानी के वचन पर श्रद्धा करना उचित है ।।३७।।

।।लावणी।।

गुरु वचनों से समझ नहीं जब आई,
सघ बाह्य की तब आज्ञा सुनवाई ।
राजगृही में नागमणी तट आये,
मणीनाग ने अनुशासित करवाये ।
गुरु सेवा में पहुंच आत्मा तारी ।। लेकर० ।।३८।।

अर्थः—गंग मुनि जब गुरु के समझाने पर भी समझ नहीं पाया, तब उसे संघ बाह्य घोषित कर दिया । किसी दिन घूमते हुए मुनि राजगृही आये और मणिनाग यक्ष के देवालय पर ठहरे । मणिनाग यक्ष सम्यक् दृष्टि था । अतः उसने मुनि को समझाया और बतलाया कि मैंने भी प्रभु से ऐसा ही सुना है अतः जाओ गुरुदेव से क्षमा मांग कर पुनः जिन वचनानुसार स्थिर मन से संयम का पालन करते रहो ।।३८।।

॥लावणी॥

शासन बल से निन्हव की न चली तब,
भूल मानकर सुपथ लगे वे भी तब ।
आर्य सुहस्ती हुए प्रभावक मुनिवर,
संप्रति ने बनवाये कहते जिन घर ।
मिले न कोई बात पुष्टि करनारी ॥ लेकर० ॥३६॥

अर्थ:-- जब संघ बल से निन्हव की नहीं चल पाई तब भूल स्वीकार कर उसने फिर सत्यमार्ग स्वीकार किया । महागिरि के समान आर्य सुहस्ती भी बड़े प्रभावक मुनि हुए, उनसे प्रतिबोध पाकर संप्रति राजा ने जिन धर्म की बड़ी सेवा की । कहा जाता है कि उसने पृथ्वी को जिन मंदिर से मंडित कर दिया । परन्तु इसकी पुष्टि में कोई सबल प्रमाण प्राप्त नहीं होता, न सम्प्रति द्वारा निर्मापित कोई मूर्ति ही प्राप्त होती है ॥३६॥

महागिरी और सुहस्ति के वंश और सद्गुणों का परिचय

॥लावणी॥

महागिरि का वंश साधना प्रेमी,
कौटिक गण में था विद्याबल नामी ।
विद्याबल से भिक्षा नहीं मिलाई,
संयमप्रिय कई अंत समाधि लगाई ।
दुर्बल मन कई शिथिल वृत्ति ली धारी ॥लेकर०॥४०॥

अर्थ:—महागिरि का वंश अधिक साधना-प्रेमी था । उनके प्रमुख शिष्य बहुल बलिस्सह आदि हुए । दूसरी ओर सुहस्ती के शिष्य सुस्थित से कौटिक गण चला । इसमें विद्याबल की विशिष्टता पाई जाती है । दुर्भिक्ष की बाधा में भी संयमप्रिय संतों ने विद्याबल से भिक्षा प्राप्त करना नहीं चाहा, किन्तु बहुत से आत्मार्थी मुनियों ने तो शुद्ध भिक्षा के अभाव में अनशन पूर्वक जीवन विसर्जन कर दिया और कई मंद मनोबल वालों ने शिथिल वृत्ति स्वीकार कर ली ॥४०॥

॥ लावणी ॥

गिरि ने पड़िमा साधन करना ठान

सुहस्ती का गणनायक पद पाना।
पाटलिपुर में दोनों मुनि चल आये,
वसुभूति के घर उपदेश सुनाये।
भिक्षा हित गिरि भी आये उस वारी ।। लेकर० ।।४१।।

अर्थः—महागिरि की यह विशेषता कही जा चुकी है कि उन्होंने कठोर आचार की साधना के लिये एकलविहार पडिमा का साधन चालू किया और गण व्यवस्था का काम आर्य सुहस्ती को सभलाया। किसी समय दोनो विचरते हुए पाटलिपुर आ गये। एक बार आर्य सुहस्ती वसुभूति सेठ के यहा उसके परिवार को प्रतिबोध देने उपदेश कर रहे थे, उसी समय भिक्षा हेतु महागिरि भी वहा आ पहुँचे ।।४१।।

।। लावणी ।।

सुहस्ती ने विनयभाव दरसाया,
त्याज्य अन्न लेते परिचय बतलाया।
जगी सेठ मन भक्ति स्वजन जतलाये,
त्याज्य बताकर देना भाव सवाये।
स्वजनों ने भी ऐसी की तय्यारी ।। लेकर० ।।४२।।

अर्थः– आर्य सुहस्ती ने आर्य महागिरि को आते देख कर विनय से आदर दिया और सेठ के पूछने पर महागिरि के तपस्वी जीवन का परिचय देते हुए कहा कि ये गृहस्थ के यहा डाले जाने वाले असार आहार को ही लेते है। बडे तपस्वी है। यह सुन कर सेठ के मन मे भक्ति जगी और उसने स्वजन वर्ग को जतलाया कि आर्य के आने पर तुम त्याज्य बता कर उत्तम भोजन प्रेम से देना। सेठ के कथनानुसार स्वजनों ने भी ऐसी ही तैयारी की ।।४२।।

।। लावणी ।।

तीस वर्ष गृहवास संयमी सित्तर,
चालीस वत्सर बाद तीस पदवीधर।
पूर्ण शतायु होकर स्वर्ग सिधाये,

कठिन साधना से शासन शोभाये ।
गिरि सम अविचल सहे परीषह भारी ।।लेकर०।।४३।।

अर्थः—आर्य महागिरि ३० वर्ष घर में रहे और ७० वर्ष तक संयम साधन किया। जिसमें ४० वर्ष की सामान्य साधना के पश्चात् आचार्य बन कर ३० वर्ष तक शासन का सचालन किया। कुल १०० वर्ष की आयु भोग कर स्वर्ग वासी हुए। कठिन तप की साधना करके आपने जिन शासन की शोभा बढ़ाई। परिषहों के सहने में आप मेरुगिरि सम अचल रहे। सचमुच आपका महागिरि नाम सार्थक रहा था ।।४३।।

।। लावणी ।।

संयम में शैथिल्य, तभी घुस आया,
शाखाओं का उदय संघ में छाया ।
उत्तर बलिसह गण की शाखा जानो,
महागिरि के स्थविर आठ पहिचानो ।
सुहस्ती से बड़ी साख विस्तारी ।। लेकर० ।।४४।।

अर्थः—आर्य सुहस्ती के समय में ही संयमाचार में शिथिलता का प्रवेश होने लगा और यहीं से शाखाओं का संघ में उदय हुआ। महागिरि के शिष्य बलिसह से उत्तर बलिसह शाखा प्रकट हुई और सुस्थित से कौटिक गच्छ प्रकट हुआ। महागिरि के आठ शिष्य स्थविर कहलाये। इसी तरह सुहस्ती से सुस्थित सुप्रतिबुद्ध आदि रूप में बड़ी शाखा चली, जो अधिक प्रसार पाई ।।४४।।

।। लावणी ।।

स्वाति और श्यामार्य हुए व्रतधारी,
त्रिशत छिहत्तर हुए स्वर्ग अधिकारी ।
बहुल बलिस्सह गिरि के पटधर जानो,
सुस्थित से कौटिकगण उदय पिछानो ।
आठ पाट निर्ग्रंथ नाम था जहारी ।।लेकर०।।४५।।

अर्थः—आर्य बलिस्सह के स्वाति मुनि और स्वाति के श्यामाचार्य हुए। वीर संवत् ३७६ में स्वाति के शिष्य श्यामाचार्य का स्वर्गवास हुआ।

ये प्रथम कालकाचार्य थे। महागिरि के प्रथम पट्टधर बहुल-बलिस्सह हुए। आर्य सुहस्ती के शिष्य सुस्थित सूरि से कौटिक गण प्रकट हुआ। कहा जाता है कि सूरि मंत्र का क्रोड़ बार जाप करने से इनके गच्छ को कौटिक कहा जाने लगा। सुधर्मा से इस प्रकार आठ पाट तक निर्ग्रंथ गच्छ चलता रहा ॥८५॥

दूसरे कालकाचार्यः—

॥ लावणी ॥

गर्दभिल्ल उच्छेद कालकाचारी,
वर्ष चार सौ त्रेपन में बलधारी।
सरस्वती भगिनी को मुक्त कराया,
अनहोनी हुई बात हृदय थर्राया।
सब के मन में मची उदासी भारी ॥ लेकर० ॥४६॥

अर्थः वीर संवत् ४५३ में गर्दभिल्ल को युद्ध में हराने वाले दूसरे कालकाचार्य हुए। उन्होंने शकों को साथ लेकर गर्दभिल्ल से लड़ाई की और अपनी सरस्वती बहिन, जो साध्वी थी, को राजा गर्दभिल्ल के चंगुल से मुक्त कराने के लिए पूरा जोर लगाया। एक अहिंसक मुनि का साध्वी को बचाने के लिये हिंसक युद्ध में कूद पड़ना अनहोनी बात थी। साध्वी के हरण से सब के मन में उदासी छा गई थी ॥४५॥

संक्षिप्त घटना इस प्रकार हैः-

॥लावणी॥

गर्दभिल्ल नृप सरस्वती पर मोहा,
किया हरण उसने, किया शासन द्रोहा।
संघ विनय से भी उसने नहीं माना,
कालक के मन हुआ दर्द अति छाना।
करा सती को मुक्त शुद्धि कर डारी ॥लेकर०॥४७॥

अर्थः- राजा गर्दभिल्ल आचार्य कालक की भगिनी सरस्वती नामक साध्वी के रूप पर मुग्ध हो गया और वह उस साध्वी का हरण कर अपने

अंतःपुर में ले आया। इस प्रकार उसने जिन शासन के प्रति बड़ा द्रोह किया। संघ के विनयपूर्वक निवेदन करने पर भी उसने साध्वी को नहीं छोड़ा। तब आर्य कालक को बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने शकों की सहायता से गर्दभिल्ल को युद्ध में हराकर साध्वी को मुक्त कराया, बाद मे उन्होंने प्रायश्चित्त से अपनी शुद्धि की ॥४७॥

(तपा प० गाथा ४ की टि०)

॥लावणी॥

आर्य श्याम के पटधर शंडिल राजे,
अष्टोत्तर शत की शुभ वय में छाजे।
चार शती चवदह में गण दीपाया,
मुनि समुद्र को अपने पद बिठलाया।
चतुष्पंचाशत् में हुए सुर अधिकारी ॥लेकर०॥४८॥

अर्थ : –आर्य श्याम के पट्टधर शाण्डिल्य आचार्य हुए। इनकी शुभ आयु १०८ वर्ष की थी। वीर संवत् ४१४ मे शासन को दिपा कर आपने आर्य समुद्र को अपने पट्ट पर बिठाया। ४५४ मे आप स्वर्ग के अधिकारी हो गये ॥४८॥

॥रा०॥

समुद्र के पट्ट मंगू देखो, ज्ञान क्रिया के धारी हैं।
श्रुत सागर के पार करण को, प्रतिभा बल विस्तारी हैं ॥७॥

अर्थः आर्य समुद्र के पट्ट पर आचार्य मंगू हुए। ये ज्ञान क्रिया के धारक थे। श्रुत समुद्र को पार करने के लिए उन्होंने अपने प्रतिभा बल को खूब बढ़ाया था ॥७॥

॥लावणी॥

आर्य मंगू के पट्ट गणी नंदिल हैं,
नवपूर्वी रक्षित के संत सबल हैं।
वैरोट्या के प्रतिबोधक कहलाये,
ज्ञान चरण में उद्यत कह बतलाये।
विक्रम सम्वत् दो का है काल विचारी ॥लेकर०॥४९॥

अर्थः—आर्य मंगू के शिष्य नंदिल गणी हुए। ये आर्य रक्षित की परम्परा के ६ पूर्वों के ज्ञाता थे। आप वैरोट्या देवी के प्रतिबोधक कहलाये और ज्ञान चरण की आराधना में बड़े कुशल समझे गये। आपका समय विक्रम संवत् दो का है ॥४६॥

॥लावणी॥

आर्य नागहस्ती नंदिल के पटधर,
शत पर सोलह परम आयु के श्रुतधर।
वाचक वंश की उज्ज्वल साख पुराई,
पांच पूर्व का रहा ज्ञान कहे भाई।
छ सौ निव्वासी में सुर हुए अवतारी ॥लेकर०॥५०॥

अर्थः—आर्य नंदिल के पट्टधर आर्य नागहस्ती हुए। आप बड़े श्रुतधर थे। आपको परम आयु ११६ वर्ष की थी। आपने वाचक वंश की विमल प्रतिष्ठा में चार चांद लगाये। आपके समय तक पाँच पूर्वों का ज्ञान विद्यमान था। कहा जाता है कि वीर संवत् ६८९ में आप स्वर्गवासी हुए ॥५०॥

॥लावणी॥

आर्य रेवती नागहस्ती के पटधर,
पूर्ण आयु शत पर नव अति सुखकर।
वीर काल अष्टम शत वर्ष अड़तालो,
वाचकवंश की शोभा को उजवालो।
हुए अठारह पाट विमल यशधारी ॥लेकर०॥५१॥

अर्थः—आर्य नागहस्ती के पट्ट पर आर्य रेवती हुए। आपकी आयु १०९ वर्ष की थी। वीर संवत् ७४८ में वाचक वंश की शोभा बढ़ा कर आप स्वर्ग पधारे। इस प्रकार विमल यश वाले आप अठारहवें आचार्य थे ॥५१॥

॥लावणी॥

आर्य सिंह रेवती के पट्ट विराजे,
नवमी सदी का प्रथम चरण शुभ छाजे।

कालिक श्रुत के धारक सूरि प्रधानो,
सिंह आर्य के पट स्कंदिल गुणवानो।
हुए पाट ये बीस पराक्रमधारी ॥५२॥

अर्थः—आचार्य रेवती के पाट पर आर्य सिंह विराजे। आप कालिक श्रुत के विशिष्ट ज्ञाता १६ वें आचार्य माने गये हैं। आपका सत्ताकाल वीर निर्वाण की नवमी सदी का आरंभ काल है। आर्य सिंह के पट्टधर आर्य स्कंदिल हुए। ये महागिरि की परम्परा में २० वें आचार्य थे ॥५२॥

॥लावणी॥

स्कंदिल पीछे हेमवान पद छाजे,
श्रुतबल से अति तेज संघ में गाजे।
विचरण भूमंडल में विस्तृत जिनका,
नागार्जुन से सबल पट्टधर उनका।
कठिन समय में शासन रक्षाधारी ॥लेकर०॥५३॥

अर्थः—आर्य स्कंदिल के पीछे २१ वें आचार्य हिमवान् हुए। आप विशिष्ट श्रुतधर हो कर संघ में तपस्तेज से दीपते रहे। आपका विहार क्षेत्र विस्तृत रहा। आपके पीछे २२ वें आचार्य नागार्जुन भी बड़े समर्थ संत हो चुके हैं, जिन्होंने कठिन समय में जिन शासन की रक्षा की ॥५३॥

॥लावणी॥

जन्म सात सौ तेराणूं बतलाया,
दीक्षा लेकर संयम में मन लाया।
युग प्रधान छब्बीस आठ में राजे,
सौ पर ग्यारह वय में स्वर्ग विराजे।
वाचक पद से विमल कीर्ति विस्तारी ॥लेकर०॥५४॥

अर्थः—इनका जन्म वीर सम्वत् सात सौ तेराणूं कहा गया है। इन्होंने दीक्षा ले कर संयम में मन लगाया। वीर संवत् आठ सौ छब्बीस में ये युग प्रधान आचार्य बने और पूर्ण आयु १११ वर्ष को भोग कर स्वर्ग सिधारे। इन्होंने वाचक पद पर रह कर अच्छी कीर्ति कमाई ॥५४॥

||लावणी||

भूतदिन्न नागार्जुन पीछे दीपे,
मार्दव मन शोभा में कांचन जीपे।
संयम विधि के ज्ञाता कह गुण गाये,
वर्ष एक कम बीस शतायु पाये।
नाइल कुल की प्रीति बढ़ाई भारी ||लेकर०||५५||

अर्थः—नागार्जुन के पीछे आचार्य भूतदिन्न हुए। मार्द्दव भाव से ये कांचन की तरह चमक रहे थे। देव वाचक ने संयम विधि के ज्ञाता कह कर इनकी स्तुति की है। इन्होंने अपनी योग्यता से नाइल कुल का बहुत ही प्रेम संपादन किया। इनकी पूर्ण आयु ११९ वर्ष की बतलाई गई है ||५५||

||लावणी||

भूतदिन्न के पट लौहित्य गणी राजे,
सूत्र अर्थ के विशिष्ट ज्ञाता छाजे।
वीरकाल नव सौ चालीस की वेला,
अमरलोक वासी हुए छोड़ झमेला।
दूष्य गणी को किया पट्ट अधिकारी ||लेकर०||५६||

अर्थ.—भूतदिन्न के बाद आर्य लोहित्य गणी पद पर विराजे। ये सूत्र अर्थ के विशिष्ट ज्ञाता थे। इन्होंने दूष्य गणी को उत्तराधिकारी बना कर वीर संवत् ९४० में स्वर्ग प्राप्त किया ||५६||

||लावणी||

दूष्यगणी के पद देर्वाध विराजे,
पूर्व ज्ञान के धारक महिमा छाजे।
स्मृतिबल की लखि हानि गणी ने सोचा,
सुकाल में मुनिमंडल से आलोचा।
श्रुतवाचन की मन में बात विचारी ||लेकर०||५७||

अर्थः—दूष्य गणी के बाद २७ वें पट्ट पर आचार्य देर्वाध होते हैं।

ये एक पूर्व के ज्ञाता थे। स्मृति बल की क्षीणता देख कर इन्होंने सोचा कि शास्त्रों का रक्षण किस प्रकार किया जाये। सुकाल होने पर मुनिमंडल से परामर्श कर यह तय किया कि प्रमुख संतो को बुलाकर एक श्रुतपरिषद् भराई जाय और उसमें वाचना द्वारा अंगादि सूत्रो का संकलन व रक्षण किया जाय ॥५७॥

वाचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

॥लावणी॥

प्रथम वाचना भद्रबाहु युग में थी,
द्वितीय सुस्थित ने कलिंग में की थी।
बलिस्सह आदि श्रमण श्रमणी भी आये,
अंग और दशपूर्व पाठ स्थिर थाये।
स्थविरावली में कही बात यह सारी ॥लेकर०॥५८॥

अर्थ—भद्र बाहु के समय में प्रथम वाचना पाटलिपुत्र में हुई, और दूसरी सुस्थित के समय कलिंग में की गई। उसमें बलिस्सह आदि प्रमुख संत और साध्वियां भी उपस्थित थे। हिमवत स्थविरावली के अनुसार इसमें ११ अंग और दस पूर्वो के पाठ स्थिर किये गये ॥५८॥

॥लावणी॥

वज्रसेन के समय तीसरी जानो,
रक्षित का नेतृत्व मुख्य पहिचानो।
दशपुर में शतपांच बराणूं (५९२) कहते,
अनुयोगों का पृथक् करण करवाते।
श्रमणवर्ग का मेधाबल अवधारी ॥लेकर०॥५९॥

अर्थ--तीसरी वाचना आचार्य वज्रसेन के समय दशपुर नगर में हुई, जो वीर संवत् ५९२ में आर्य रक्षित के नेतृत्व में सम्पन्न हुई थी। इसमें अनुयोगों का पृथक् करण किया गया। अनुभवी आचार्यो ने देखा कि आज श्रमणवर्ग संयुक्त अनुयोग को धारण नहीं कर सकेगा, अत उन्होंने पृथक् अनुयोग के रूप में शास्त्रो का वर्गीकरण कर डाला ॥५९॥

॥लावणी॥

मथुरा और वल्लभी में चौथी जानो,
स्कंदिल नागार्जुन मुखिया पहचानो।
वीर काल सौ आठ तीस बतलाया,
उत्तर दक्षिण मुनिगण के हित लाया।
पाठ भेद देवर्धि लिये सवारी ॥लेकर०॥६०॥

अर्थ—चौथी वाचना वीर निर्वाण सम्वत् ८३० में आर्य नागार्जुन और स्कंदिल के नेतृत्व में हुई। जिसमें उत्तर के श्रमण मथुरा में और दक्षिण के वल्लभी में क्रमशः नागार्जुन और स्कंदिल के नेतृत्व में एकत्र हुए। आचार्य देवर्धि ने दोनो वाचनाओं के पाठ भेदों को उचित रूप से मिला कर एक रूपता लाने का प्रयत्न किया ॥६०॥

इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :

॥लावणी॥

मचा युद्ध अरु मतसघर्षण जग में,
हूण गुप्त का समर मध्य भारत में।
भिक्षा दुर्लभ त्यागी रह गये विरले,
श्रुतसंरक्षण करके युग को बदले।
स्कंदिल ने मथुरा में की तय्यारी ॥लेकर०॥६१॥

अर्थ—वीर निर्वाण की नवमी सदी मे हूण और गुप्त वंश के राजाओं का मध्यभारत मे युद्ध चला और साम्प्रदायिक संघर्ष से भिक्षा दुर्लभ हो चली। उस समय ऐसे शक्तिशाली श्रमण अल्प संख्या मे थे जो शास्त्रों का रक्षण कर युग को बदल सके। अतः आचार्य स्कंदिल ने मथुरा मे श्रुत संरक्षण के लिये आगम वाचना की ॥६१॥

॥लावणी॥

नागार्जुन ने वल्लभी सभा भराई,
दक्षिण के मुनि हुए इकट्ठे आई।
दोनों में कुछ पाठ भेद रह पाये,

मिला न ऐसा योग मर्म समझाये।
देर्वाध ने गुणगाथा विस्तारी ॥लेकर०॥६२॥

अर्थः—जो मुनि दक्षिण में विचर रहे थे, उनके लिये नागार्जुन के नेतृत्व में वल्लभी में सभा की गई, इन दोनो वाचनाओं में कुछ पाठ भेद रह गये थे, जो दोनों प्रमुख मुनियों के मिलने से ही हल होते। परन्तु वैसा संयोग नहीं मिल सका। तब आचार्य देर्वाध ने पाठ भेदों की सकलना कर यथा मति मुख्य एवं गौण रूप से पाठों की स्थापना की जो, आज भी विद्यमान है ॥६२॥

॥लावरणी॥

श्लेष्महरण को सुंठी इक दिन लाये,
भूल न उसका प्रत्यर्पण कर पाये।
क्रिया करत गिरने से मन में आई,
मंदबुद्धि कैसे श्रुत रहे टिकाई।
कर विचार आगम लेखन की धारी ॥लेकर०॥६३॥

अर्थः– आचार्य देवर्धि अपनी कफ-व्याधि के उपशम हेतु एक दिन सूंठ लाये, उसको समयान्तर में उपयोग कर शेष को पीछी लौटाने के विचार से कान में रख छोड़ा था। पर दिन भर स्मृति नही आई। सायंकाल क्रिया करने समय सूंठ के यकायक कान से निकल कर नीचे गिर पड़ने पर ध्यान आया तो आचार्य को विचार हुआ कि इतनी सी बात भी स्मृति से निकल गई तो आगे के मंद मेधा-बल वाले शिष्यों में श्रुत कैसे टिकेगा ? ऐसा सोचकर आगम-लेखन का निश्चय किया ॥६३॥

॥लावरणी॥

वीरकाल नवसौ अस्सी जब आया,
देव ऋद्धि ने फिर समुदाय मिलाया।
उभय वाचना के पाठों को लेकर,
आगमलेखन करवाया शुभमतिधर।
आज उसी से हरी संघ की बाड़ी ॥लेकर०॥६४॥

अर्थः—वीर निर्वाण ९८० के समय उन्होंने फिर वल्लभी में श्रमण समुदाय को एकत्र किया और दोनों वाचनाओं के पाठों को ध्यान में लेकर आगमों का लेखन करवाया। उनके सत्प्रयास का ही फल है कि संघ की श्रुतवाड़ी आज हरी भरी है और हम शास्त्र भंडार को सुरक्षित पा रहे हैं ॥६४॥

॥लावणी॥

परिस्थिति में साधारण नर ढलते,
साहसयुत नर युग का रंग बदलते।
वीर और सत्पुरुष वही कहलावे,
श्रमबल से बाधा को दूर हटावे।
श्रुतलेखन कर गणि ने नाव उबारी ॥लेकर०॥६५॥

अर्थः—साधारण जन मन का स्वभाव परिस्थिति के अनुसार ढल जाना है। केवल प्रतिभाशाली साहसी पुरुष ही समय का रंग अपने अनुकूल बदल सकते हैं। वास्तव में सत्पुरुष और वीर वही कहलाता है, जो श्रमबल से बाधा को हटा कर आगे बढ़ता है। देवर्धि गणी ने आगम-लेखन कर शासन की डूबती हुई नाव को उबार लिया ॥६५॥

॥रास०॥

आर्य सुहस्ती वज्र बीच में,
सात मुख्य आचार्य हुए।
(१) गुण सुन्दर, (२) कालक, (३) स्कंदिल औ
(४) मित्ररेवती, (५) धर्म गये ॥८॥

(६) भद्रगुप्त (७) श्री गुप्त नाम के प्रतिभाशाली संत हुए।
रक्षित भद्रगुप्त निर्यामक, श्रुतरक्षण में दक्ष हुए ॥९॥

आर्य खपुट और वृद्धवादी, नृप विक्रम के समकाल हुए।
सिद्धसेन से ज्योतिर्धर ने, भूप चरण में झुका दिये ॥१०॥

अर्थः—आर्य सुहस्ती और वज्रस्वामी के बीच सात प्रतिभाशाली प्रमुख आचार्य हुए, जो इस प्रकार है :

(१) गुण सुन्दर,
(२) आर्य कालक,
(३) आर्य स्कंदिल,
(४) आर्य रेवती मित्र,
(५) आर्य धर्म,
(६) भद्रगुप्त और
(७) श्रीगुप्त

इनमें आर्य रक्षित भद्रगुप्त आचार्य के निर्यामक और श्रुतरक्षण में बहुत ही दक्ष हो चुके हैं ॥८॥६॥ फिर राजा विक्रमादित्य के समय में आर्य खपुट और वृद्धवादी नाम के आचार्य भी हुए हैं। सिद्धसेन जैसे ज्योतिर्धर आचार्य भी इसी समय हुए, जिन्होंने बड़े बड़े भूपतियों को अपने चरणों में झुका कर जिन शासन की शोभा बढ़ाई ॥१०॥

आचार्य सिद्धसेन का परिचय इस प्रकार है : –

॥लावणी॥

विद्याबल से सिद्धसेन अकड़ाया,
वृद्धवादी से चर्चा करने आया।
मिले मार्ग गुरु चर्चा करण उमाया,
कहे भिक्षु मैं वाद करण को आया।
हारे सो ही शिष्य वृत्ति ले धारी॥ लेकर० ॥६६॥

अर्थ.—सिद्धसेन को अपने विद्याबल का बड़ा अभिमान था। उसने वृद्धवादी की प्रशंसा सुनी तो उनके साथ शास्त्रचर्चा करने को निकल पड़ा। उसको रास्ते में ही वृद्धवादी मिल गये।

मिलते ही उसने कहा, "महाराज! मैं आपसे वाद करने आया हूँ। मेरी प्रतिज्ञा है कि हम दोनों में जो हारेगा वही जीतने वाले का शिष्यत्व स्वीकार करेगा" ॥६६॥

॥लावणी॥

गोपालों के बीच वाद किया जहारो,
वृद्धवादी माधुर्य गिरा उच्चारी।

मध्यस्थों ने खुश हो विजय सुनाई,
सिद्धसेन ने भी रक्खी सच्चाई।
गुरुचरणों में लिये महाव्रत धारी ।। लेकर० ।।६७।।

अर्थः—सिद्धसेन ने ग्वालों को मध्यस्थ मान कर वृद्धवादी से वही वाद प्रारम्भ कर दिया। वृद्धवादी ने मधुर संगीत मय लोक भाषा में उत्तर दिया और सिद्धसेन संस्कृत में अपनी विद्वता दिखाता रहा। मध्यस्थों ने वृद्धवादी की बात सुन समझ कर खुशी से उनकी विजय घोषित कर दी। सिद्धसेन ने भी अपने वचन को निभाने के लिये उनका शिष्यत्व स्वीकार किया, एवं गुरु द्वारा प्रदत्त पंच महाव्रत धारण करके अपने को गुरु चरणों में अर्पित कर दिया ।।६७।।

।।लावणी।।

विचरत दोनों उज्जयनी में आये,
देख प्रशंसा भूधर मन चकराये।
करण परीक्षा मन में वन्दन कीना,
सिद्धसेन ने धर्म वृद्धि कह दीना।
भूपति के मन में जगी भावना भारी ।। लेकर० ।।६८।।

अर्थ—सिद्धसेन के शिष्य बन जाने पर दोनों गुरु शिष्य विचरते हुए उज्जयनी नगरी में आये। वहाँ पर सिद्धसेन की प्रशंसा सुनकर राजा विक्रमादित्य का मन उनकी ओर आकर्षित हुआ और मुनि को देखकर राजा ने परीक्षा हेतु उनको मन में ही अभिवादन किया। सिद्धसेन ने उत्तर में हाथ उठाकर विक्रम को "धर्मवृद्धि" कह दिया। इससे राजा विक्रम के मन में उनके प्रति श्रद्धा जगी ।।।६८।।

।।लावणी।।

विक्रम ने उपहार भेंट दिया उनको,
हमें नहीं, दो ऋणपीड़ित पुरजन को।
जिनवचनों से भूपति को समझाया,
विचरत मुनिवर चित्रकूट में आया।
विक्रम ने उपकार किया जग जहारी ।। लेकर० ।।६९।।

अर्थ. – विक्रम राजा ने प्रसन्न हो कर सिद्धसेन को कुछ सुवर्णादि भेट किये। परन्तु सिद्धसेन ने "किसी ऋणपीडित नागरिक को दिया जाय, जो इसका अर्थी हो" यह कह कर उसे टाल दिया। उन्होंने विक्रम को जिन मार्ग समझाया और फिर वहां से चल कर चित्रकूट चित्तौड पहुंचे। सिद्धसेन से प्रतिबुद्ध हो विक्रम ने प्रजाजनों का जो उपकार किया वह प्रसिद्ध है ॥६९॥

॥लावणी॥

विद्या ले मुनि कूर्मापुर चल आये,
देवपाल नृप का रक्षण करवाये।
सिद्धसेन मुनि 'दिवाकर' पद शोभावे,
भूपति भी नितप्रति दर्शन को जावे।
राजमान्य हो, रहे वहीं प्रियकारी ॥ लेकर० ॥७०॥

अर्थः – चित्रकूट के जयस्तम्भ को देखकर सिद्धसेन को आश्चर्य हुआ। स्तभ को सू घ सू घ कर उन्होंने परीक्षण किया और एक लेप द्वारा स्तंभ का मुख उघाड कर भीतर से एक पुस्तक प्राप्त की। उसमे सुवर्ण सिद्धि और सरसवी नाम की दो विद्याएं थी। विद्या ग्रहण कर मुनि कूर्मापुर आये, वहा का राजा देवपाल, जिसको विरोधी राजा ने घर लिया था, अपनी असमर्थता से चिन्तित हो सिद्धसेन के पास आया। सिद्धसेन ने दोनो विद्याओं से अतुल-धन और सैन्य उत्पन्न कर उसकी सहायता की। इससे राजा देवपाल ने प्रसन्न हो उन्हे 'दिवाकर' पद से अलंकृत किया और प्रतिदिन आचार्य के दर्शन के लिये उत्कंठित रहने लगा। फलस्वरूप सिद्धसेन राजमान्य होकर वही रहने लगे ॥७०॥

॥ लावणी ॥

सुना हाल तब खेद हुआ गुरु मन में,
चले एक दिन उठा पालकी जन में।
सिद्धसेन गति विषम देख बतलावे,
बाधति सम नहीं पीड़ा खंध कहावे।
जान गुरु को चरण नमे बलिहारी ॥ लेकर० ॥७१॥

अर्थः— गुरु वृद्धवादी ने जब यह बात सुनी तो उनके मन को बड़ा खेद हुआ। वे सिद्धसेन को बोध देने वहाँ आये और गुप्त रूप से पालकी उठाने वाले अनुचरों में मिल गये। एक दिन जब वे पालकी उठाकर चले जा रहे थे तो सिद्धसेन ने विषम गति देखकर पूछा—"बाधति स्कंध एष ते" अर्थात् तुम्हारा कंधा दुखता होगा?

वृद्धवादी ने उत्तर दिया—'तथा न बाधते देव! यथा बाधति बाधते" अर्थात् हे राजन्, जैसा 'बाधति' का अशुद्ध उच्चारण पीड़ा देता है वैसा स्कंध दर्द नहीं करता।"

सिद्धसेन समझ गये कि इस प्रकार का उत्तर तो आचार्य गुरु वृद्धवादी का ही होना चाहिये। उन्होंने नीचे उतर कर गुरु को वंदन किया और अपनी भूल के लिए क्षमा याचना की ॥७१॥

॥दोहा॥

सिद्धसेन नवकार मंत्र को, संस्कृत में कर डाला है।
वृद्धवादी ने दोष बताकर, दिया प्रायश्चित्त काला है ॥११॥
विनयशील मुनि ने गुरु आज्ञा, भक्तिसहित सिरधारी है।
भूप बोध दे द्वादश वत्सर, रहे बाह्य व्रतधारी है ॥१२॥

अर्थः— सिद्धसेन ने विद्वानों में संस्कृत का महत्व देखकर एक दिन नवकार मंत्र को संस्कृत में बदल दिया। वृद्धवादी ने जब जाना तो सूत्रकारों की इसमें अवहेलना बताकर उन्हें दशवें पारंचित प्रायश्चित्त का दण्ड बतलाया। विनयशील होने के कारण सिद्धसेन ने भक्तिसहित गुरु द्वारा बतलाया गया प्रायश्चित्त स्वीकार किया और १२ वर्ष तक संघ से बाहर रह कर कई राजाओं को प्रतिबोध दिया। जो इस प्रकार है ॥११-१२॥

॥तर्ज चलत॥

गुप्त रूप से उत्कट तप आराधे,
शासन को आध्यात्मिक सेवा साधे।
भूप अठारह धर्म मार्ग में जोड़े,
निर्मल मन से कर्म बंध को तोड़े।
गुप्त रूप से फिर दीक्षा स्वीकारी ॥ लेकर० ॥७२॥

अर्थः—बारह वर्ष तक गुप्त रह कर इन्होंने उत्कृष्ट तप की साधना करते हुए शासन की आध्यात्मिक सेवा की। इस बीच १८ राजाओं को धर्म मार्ग में लगाया। फिर निर्मल मन से प्रायश्चित्त द्वारा कर्म भार को हल्का कर गुरु चरणों मे आकर उन्होंने पुनः दीक्षा स्वीकार की और संघ मे पुनः सम्मिलित हुए ॥७२॥

॥लावणी॥

धन्य भाग से संघ रहा गुणधारी,
नायक भी निष्पक्ष न्याय प्रियकारी।
शिष्य सुभागी अनुशासन मे चाले,
स्वेच्छाचारी हो न चले मतवाले।
ज्ञान क्रिया को धार आतमा तारी, ॥ लेकर० ॥७३॥

अर्थ—उस समय का कैसा आदर्श था, संघ व्यवस्था भी आदर्श और नायक भी निष्पक्ष एवं न्याय प्रेमी। शिष्य भी कैसे भाग्यशाली कि प्रेम से अनुशासन का पालन करते, स्वेच्छाचारी होकर मनमाना आचरण नही करते। सिद्धसेन ने गुरु की आज्ञानुसार ज्ञान क्रिया का सम्यक् पालन करते हुए आत्मा का उद्धार किया।

आर्य रक्षित

॥दोहा॥

रक्षित का अब हाल सुनाऊँ, माता से प्रतिबुद्ध हुए।
पूर्व ज्ञान का शिक्षण लेकर, शासन के आधार हुए ॥१३॥

अर्थ अब आर्य रक्षित का हाल सुनाता हूँ जो माता की शिक्षा से प्रेरित होकर दश पूर्वों के ज्ञाता और शासन के आधार बने ॥१३॥

॥तर्ज चलत॥

सोम देव के पुत्र हुए एक नामी,
पाट नगर में शिक्षा ली हितकामी।
विद्या पा दशपुर में पीछे आये,
नागर जन सब उत्सव कर घर लाये।
मातृ चरण में किया नमन शिर डारी ॥लेकर०॥७४॥

अर्थः—दशार्णपुर के पुरोहित सोमदेव के पुत्र रक्षित बड़े ही नामी हुए। उन्होंने पाटलीपुत्र में वर्षों तक शिक्षा ग्रहण की और अनेक विद्याओं में पारंगत होकर पुन दशार्णपुर लौट आये। नगर के प्रमुख जनों ने उनका हार्दिक स्वागत किया। सब को चरण वंदन कर रक्षित अपनी माता के पास आये और सिर झुका कर माता का चरण स्पर्श किया ॥३४॥

॥लावणी॥

मातृ मौन से रक्षित मन अकुलावे,
मात दया कर कृपा दृष्टि बरसावे।
बोली माँ प्रिय लाल सीख क्या आया,
कला सीखने से न आत्महित पाया।
आत्मज्ञान सीखो ये इच्छा म्हारी ॥लेकर०॥३५॥

अर्थ—पुत्र के प्रति मातृवात्सल्य अनूठा होता है, फिर भी रक्षित ने चरण वंदन के समय भी माता को मौन देखकर चिन्ता व्यक्त की।

उसने माता से कहा "माँ! बोलती क्यों नहीं हो, इस समय तो तुझे बड़ी खुशी होनी चाहिये।" माँ बोली, "वत्स! तू क्या सीख कर आया है जिससे मैं खुशी मनाऊ। इस पेट भराऊ विद्या से तो कोई कल्याण होने वाला नहीं है। मेरी इच्छा तो यह है कि तुम आत्मज्ञान की शिक्षा लो और अपना कल्याण करो।"॥३५॥

॥लावणी॥

पुत्र पढ़ा तू भव-वर्द्धन की विद्या,
पाऊं मैं संतोष मिला(पढ़ो)सद् विद्या।
दृष्टिवाद का ज्ञान कहाँ से पाना,
साधु चरण सेवा से ज्ञान मिलाना।
परिचय पा रक्षित ने की तैयारी ॥लेकर०॥३६॥

अर्थ—बेटा! तूने संसार भव-वर्द्धन की विद्या पढ़ी है, इससे मुझे संतोष नहीं, सद् विद्या पढो तो मुझे संतोष होगा।

पुत्र ने पूछा, "मा! सद् विद्या क्या है?"

"मा का उत्तर था दृष्टिवाद, धर्मशास्त्र।

पुत्र ने फिर पूछा "इसका ज्ञान [illegible]?"

"मा बोली "निर्ग्रन्थ श्रमणों [illegible] मिल [illegible] और वैसे मन आचार्य नाम [illegible] प्रपन नगर [illegible]।"

आचार्य नाम [illegible] परिचय प [illegible] ज्ञान [illegible] तैयार हो गया ॥७६॥

॥लावणी॥

प्रात मार्ग मे मिला विप्र एक नामी
इक्षु दण्ड नव अट लिये शुभकामी।
बोला उसको काय प्रसगे जावे
माताजी को घर मे भेट दिखावे।
मगल दर्शन मुदित हुई महतारी ॥नेकर०॥ ॥

अर्थ- प्रात [illegible] ब्राह्मण उन्हे मिला [illegible] ब्राह्मण [illegible] आप [illegible] प्रस्थान [illegible] प्रसन्न [illegible] ॥ ॥

॥लावणी॥

जाना नव पूरव का ज्ञान मिलेगा,
खण्ड दशम का पुत्र प्राप्त कर लेगा।
कैसे गुरु तट जाना साथी देखे
श्रावक ढड्डर वदन करता लेखे।
गणी ने आगत से पूछा प्रवधारी। नेकर०॥ ८।

अर्थ [illegible] सा [illegible] कि [illegible] नौ गन्ने पूरे और दशवे का एक टुकड़ा है, अत मालूम होता है कि मेरा पुत्र नव पूर्व पूरे और दशवे पूर्व का कुछ अश प्राप्त करेगा।

आचार्य तोसलीपुत्र के उपाश्रय में जाने के लिये रक्षित किसी साथी को देख रहा था। इतने में एक श्रावक आया जो, उच्च स्वर में 'निस्सिही' २ कहता हुआ उपाश्रय में प्रविष्ट हुआ और वहां आचार्य को वंदन करके बैठ गया। उसको उपाश्रय में प्रवेश करते और आचार्य को वंदन करते व उनके सन्मुख बैठते देख कर रक्षित भी उसी प्रकार वंदन कर बैठ गया। आचार्य गर्गा तोसली पुत्र ने रक्षित को नवागन्तुक समझकर पूछा ॥७८॥

॥लावरगी॥

धर्म बोध श्रावक से मैंने पाया,
दृष्टिवाद पढ़ने को शरणे आया।
साधु धर्म लेने पर ज्ञान दिलाऊं,
आज्ञा सब मंजूर ज्ञान मै पाऊं।
परिचित भूधर स्थानान्तर सुखकारी ॥लेकर०॥७६॥

अर्थ—रक्षित ने अपना परिचय देते हुए कहा, "गुरुवर ! मैंने धर्म का प्रारम्भिक बोध इस श्रावक से पाया है। मै माता के आदेशानुसार दृष्टिवाद पढने को आपकी सेवा में आया हूँ।"

आचार्य ने कहा, 'दृष्टिवाद का ज्ञान तो मुनिव्रत लेने पर सिखाया जाता है।"

रक्षित बोला, "आपकी जो आज्ञा हो, मुझे स्वीकार है. किसी भी तरह यह ज्ञान दीजिये।"

गुरु चरणों में दीक्षित होकर रक्षित ने आचार्य से कहा, "गुरुदेव ! यहां के राजा एवं प्रजा मेरे परिचित है इसलिये यहा से आप स्थानान्तर कर लीजिये तो अच्छा है ॥७६॥

। लावरगी॥

स्वल्प काल में अंग इग्यारह पाये.
आगे पढ़ने आर्य वज्र बतलाये।
आर्य वज्र थे पूर्ण ज्ञान में नामी.

उज्जैनी में भद्रगुप्त शिवकामी।
कहै करो मम सहाय आर्य व्रतधारी ॥लेकर०॥८०॥

अर्थ - आर्य रक्षित को दीक्षित कर आचार्य तोसलिपुत्र ने स्वल्प समय में ही उसे ११ अंग का ज्ञान सिखाया, फिर पूर्वो के ज्ञान में आगे बढ़ने के लिये आर्य वज्र की सेवा में भेज दिया क्योंकि आर्य वज्र पूर्व ज्ञान के विशिष्ट अभ्यासी थे। इष्ट साधन को जाते हुए मार्ग में रक्षित ने सुना कि एक अन्य आचार्य भद्र-गुप्त उज्जयनी में अनशन करने को उद्यत है। आचार्य के दर्शन करने की इच्छा हुई। रक्षित उन आचार्य की सेवा में पहुँचे। रक्षित को देखकर भद्रगुप्त आचार्य ने उनसे कहा—"तुम इस समय मेरी अन्तिम आराधना में सहयोग करो, फिर आगे जाना" ॥८०॥

॥लावणी॥

भद्रगुप्त की सेवा की मनलाई,
काल धर्म आने पर करी विदाई।
आर्य वज्र से जो तुम ज्ञान मिलाओ,
अन्त सीख पर पृथक् स्थान ठहराओ।
आर्य वज्र ने लिया स्वप्न अवधारी ॥लेकर०॥८१॥

अर्थः— आर्य रक्षित ने भी आचार्य भद्रगुप्त की बात स्वीकार की और पूरी लगन के साथ उनकी सेवा की। जब आचार्य अनशन में समाधि-पूर्वक आयु पूर्ण कर गये तब उन्होंने आगे प्रस्थान किया। अन्तिम समय भद्रगुप्त ने यह सीख दी कि आर्य वज्र से तुम ज्ञान तो प्राप्त करना, पर उनके साथ एक स्थान पर नहीं ठहरना।

आर्य वज्र ने भी रात्रि में एक स्वप्न देखा कि मेरे पात्र में से कोई दुग्धपान कर रहा है, और उस पात्र में अब स्वल्प ही दुग्ध शेष बचा है ॥८१॥

॥लावणी॥

नव्यागत लख पूछा कहाँ से आया,
तोसलिपुत्र की सेवा से चल आया।

रक्षित तुम बाहर कैसे हो ठहरे,
भद्रगुप्त की शिक्षा से दिये डेरे।
हेतु जान कर गणि ने बात विचारी ।लेकर०॥८२॥

अर्थ:—प्रातःकाल आर्यवज्र स्वप्न के फलाफल पर विचार कर ही रहे थे कि सहसा आर्य रक्षित आ पहुँचे। उनको देख कर आर्यवज्र ने पूछा "कहां से आ रहे हो ?"

रक्षित ने कहा, "आचार्य तासलिपुत्र के पास से आ रहा हूँ।"

आर्यवज्र ने पूछा, "रक्षित ! तुम अलग उपाश्रय में कैसे ठहरे हो ?"

रक्षित ने भद्रगुप्त की शिक्षा से अलग ठहरने की बात बतलाई, आर्यवज्र ने भी हेतु समझकर संतोष प्रकट किया॥८२॥

॥लावणी॥

अल्पकाल में नव पूरव लिये धारी,
दशम पूर्व का चला पाठ हितकारी।
मात पिता सब हुए स्नेह में आकुल,
लघु भाई संग कहा रटे मां प्रतिपल।
आने पर हम भी लें व्रत स्वीकारी ॥लेकर०॥८३॥

अर्थ:—विनय पूर्वक अभ्यास करते हुए रक्षित ने अल्पकाल में ही नव पूर्व का ज्ञान प्राप्त कर लिया। दशवें पूर्व का अभ्यास चल रहा था, उस समय माता ने पुत्रवियोग से आकुल होकर छोटे भाई फल्गु रक्षित को भेज कर आर्य रक्षित को संदेश कहलाया कि तुम्हारे आने पर हम भी व्रत ग्रहण करेंगे, अतः एक बार जल्दी आकर मां से मिलो॥८३॥

॥ लावणी ॥

दीक्षित कर भाई को ज्ञान मिलाते,
जपितों में घुल पूछे गुरु बतलाते।
बिन्दु मिलाया सागर शेष रहाया,
खिन्न जान कहै वज्र ठहर कुछ भाया।
चंचलता लख फिर अनुमति दे डारी ॥ले कर०॥८४॥

अर्थ:—आर्य रक्षित मुनि, भाई को वही दीक्षित कर अपना ज्ञाना- भ्यास करते रहे। नवदीक्षित फल्गु रक्षित भी यह सोचकर कि बिना भाई को साथ लिये मां के पास जाकर क्या कहूँगा, वहीं ठहरे रहे। दशवें पूर्व के जविनों (पाठों) में घुल कर एक दिन रक्षित ने गुरु से पूछा, "भगवन्! कितना पढ़ना शेष है?"

गुरु बोले, "शिष्य! बिन्दु मिलाया है, अभी सिन्धु जितना ज्ञान मिलाना शेष है।"

रक्षित निराश हुए। उनको खिन्न देखकर आर्यवज्र ने कहा "कुछ काल ठहरो तो अच्छा", पर आर्य रक्षित अब माता के पास जाने के लिये चंचल-चित्त हो उठे। अतः गुरु ने भी अवसर देखकर माता के पास जाने की अनुमति उन्हें प्रदान कर दी ॥८४॥

॥ लावणी ॥

दशपुर जा मुनि सबको धर्म सुनाया,
माता भगिनी संयम पद अवधाया।
वृद्ध खंत भी संग उन्हीं के रहता,
पर लज्जावश लिंग ग्रहण नहीं करता।
रक्षित ने दी सीख उन्हें कई बारी ॥ले कर०॥८५॥

अर्थ:—गुरु से अनुमति पाकर मुनि आर्य रक्षित दशपुर आये और सब परिजनों को धर्म सुनाकर मां एवं बहन आदि को प्रव्रज्या ग्रहण कराई। वृद्ध पुरोहित भी संग रहने लगा, पर लज्जावश उसने मुनि वेष ग्रहण नहीं किया। आर्य रक्षित ने उनको युक्ति पूर्वक समझाया और उन्हें सही मार्ग में स्थिर करने का प्रयत्न किया ॥८५॥

॥ लावणी ॥

वस्त्र युगल छत्रादि छूट मैं लेऊं,
रक्षित ने किया मान्य प्रव्रज्या देऊं।
कटि-पट करलो धार खंत तब बोला,
छत्र बिना नहीं चले इसे भी खोला।
करक जनेऊ आदिक भी लिये धारी ॥ले कर०॥८६॥

अर्थः—वृद्ध पुरोहित बोला, "श्रमण साधु तो बन जाऊं पर दो वस्त्र और छत्र आदि की छूट चाहता हूँ।"

आर्य रक्षित ने कटिपट धारण करने की छूट मंजूर कर उसको प्रव्रज्या दे दी।

एक दिन वृद्ध बोला, "छत्र विना नही चलता।"

रक्षित ने उसकी भी छूट दे डाली। कमंडलु और जनेऊ यज्ञोपवीत रखने की भी छूट और ले ली ॥८६॥

॥ लावणी ॥

मार्ग लगा कर संत सुधारण चाहे,
बाल सिखाये छत्री नहीं सिर नायें।
बाल कथन से छत्र त्याग करवाया,
यज्ञ सूत्र भी क्रम से दूर कराया।
मति-बल से थेवर की शंक निवारी ॥ले कर०॥८७॥

अर्थ:—आर्य रक्षित ने उसे श्रमण साधु मार्ग पर लगा कर फिर सुधारना चाहा। इसके लिए उन्होंने एक युक्ति निकाली। उन्होंने इसके लिये कुछ बच्चों को तैयार किया। बच्चो ने वृद्ध को देख कर कहा, "छत्ते वाले को वदन नही करना। ये श्रमण साधु नही है।"

बालकों की बात से वृद्ध ने छत्र लगाना छोड़ दिया। फिर यज्ञसूत्र भी निकाल दिया। इस प्रकार धीरे-धीरे रक्षित ने अपनी युक्ति एवं मतिबल से वृद्ध की शंका मिटा दी। फल स्वरूप अन्त में वह द्रव्य-भाव रूप उभय लिंग वाला जैन मुनि हो गया ॥८७॥

॥ लावणी ॥

देत वाचना अपना ज्ञान भुलाता,
अनुप्रेक्षा बिन पूर्व शिथिल हो जाता।
मेधावी की देख दशा गुरु सोचे,
भावि प्रजा का मेधाबल आलोचे।
पृथक् किये अनुयोग महा मतिधारी ॥ले कर०॥८८॥

अर्थ:—आर्य रक्षित ने काफी समय दुर्बलिका मित्र नाम के अपने एक शिष्य को वाचना देने में लगाया। दुर्बलिका मित्र ने कुछ दिनों बाद गुरु से कहा—"आपके वाचना देने से मेरे पहले सीखे हुए पाठ की अनुप्रेक्षा आवृत्ति बराबर नही होती जिसके विना पूर्व का ज्ञान शिथिल होता जा रहा है।"

आचार्य ने ऐसे मेधावी शिष्य की यह स्थिति देख कर विचार किया कि भावी सन्तान का मेधाबल अति मंद होता जा रहा है। अतः शास्त्र के अनुयोगों को मूल से पृथक् कर देना चाहिये। यह सोच समझकर अन्त में आर्य रक्षित ने शास्त्र के ४ अनुयोगों को मूल से पृथक् कर दिया ॥८८॥

आर्य रक्षित का शास्त्रीय ज्ञान

॥ लावणी ॥

सूक्ष्म तत्व के ज्ञाता सुरपति पूजे,
विचरत आये मथुरा को प्रति बूझे।
भूतगुहा व्यंतर के स्थान टिकावे,
सीमंधर पं शक्र तभी चल आवे।
निगोद की वागरणा पूछे सारी ॥ले कर०॥८६॥
सुन के बोला, प्रभो ! भरत में को है,
जिनवर बोले रक्षित जग में सो है।
कर ब्राह्मण का रूप स्थविर हो आया,
एकाकी आचार्य देख चल आया।
पूछे मेरी आयु कहो श्रुतधारी ॥ले कर०॥६०॥

अर्थः—आर्य रक्षित सूक्ष्म तत्व के ज्ञाता थे। विचरण करते हुए एक दिन आप मथुरा नगरी पधारे और वहाँ भूत गुहा नामक व्यन्तर के स्थान में विराजे। उस समय शक्रेन्द्र सीमंधर प्रभु की सेवा में महाविदेह क्षेत्र में गया हुआ था। वहां निगोद का विस्तृत विवेचन सुनकर वह बोला, "भगवन् ! भरत क्षेत्र में भी इस प्रकार का विवेचन व्याख्या करने वाला कोई है?"

सीमंधर प्रभु ने कहा - "मुनि आर्य रक्षित मेरे समान ही निगोद का भाव जानने वाला है ।" यह सुनकर प्रतीति करने के लिए शक्रेन्द एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाकर मथुरा नगरी आया और मुनि आर्य रक्षित को एकाकी देख पूछने लगा - "प्रभो ! मेरी आयु कितनी है ?" ८९-९०॥

॥ लावणी ॥

पूर्वों में उपयोग लगा जब जाने,
लखा शताधिक वय को अधिक प्रमाणे ।
सुर या मानव चिंतन से सब जाना,
भमुंह उठा कर बोले शक्र पिछाना ।
सत्य जानकर पड़ा चरण मंझारी ॥ले कर०॥९१॥

अर्थः—आचार्य आर्य रक्षित ने पूर्वो में उपयोग लगाकर देखा तो ज्ञान हुआ कि इसकी वय शत से कहीं बहुत अधिक है तो यह शका हुई कि यह देव है या मानव ? नजर उठा कर देखा तो ज्ञान हुआ कि यह तो सागर की स्थिति वाला इन्द्र होना चाहिये । सत्य समझ कर इन्द्र भी आचार्य के चरणों मे गिर पड़ा ॥९१॥

॥ लावणी ॥

निगोद की पृच्छा के भाव सुनाये,
भरत खण्ड का गौरव इन्द्र मनाये ।
क्षण भर ठहरो, देख मुनि स्थिर होंगे,
सुरपति बोले निदान वे कर लेंगे ।
आर्य कथन से चिन्ह बदल दिये द्वारी । लेकर० ॥९२॥

अर्थ—पृच्छा करने पर आचार्य ने उन्हें विस्तृत विवेचन सहित निगोद के भाव सुनाये । इन्द्र ने इनको भारतवर्ष का गौरव माना । जब नमस्कार कर इन्द्र जाने लगा तब आचार्य बोले—"जरा क्षण भर ठहरो, जब तक छोटे मुनि भी आ जायं । आपको देखकर उनकी श्रद्धा दृढ होगी ।"

इन्द्र ने कहा—"कदाचित् मेरे ठहरने से वे निदान न करले

इसका भय है।" पर छोटे मुनि की श्रद्धा को दृढ़ करने हेतु शकेन्द्र उपाश्रय का द्वार विपरीत दिशा मे बदल कर चले गये ॥९२॥

आर्य वज्र स्वामी

॥ लावणी ॥

रक्षित के विद्या गुरु वज्र पिछानो,
धनगिरि के प्रिय पुत्र यशस्वी मानो।
गर्भकाल में पत्नी को तज दीना,
सिंह गिरि के चरणों में व्रत लीना।
सुनंदा को हुआ पुत्र श्री कारी ॥ ले कर०॥९३॥

अर्थ:—आर्य रक्षित के विद्या गुरु वज्रस्वामी थे जो धनगिरि के यशस्वी पुत्र थे। धनगिरि ने अपनी पत्नी आर्या सुनन्दा को गर्भवती छोड़कर मुनि सिंहगिरि के पास श्रमण दीक्षा ग्रहण कर ली। फिर कुछ काल के बाद आर्या सुनन्दा की कुक्षी से एक भाग्यशाली पुत्र का जन्म हुआ ॥९३॥

॥ लावणी ॥

बाल ज्ञान से पूर्व जन्म संभारे,
मातृस्नेह को क्षीण करण मन धारे।
रुदन करे प्रति दिन भर मां घबरावे,
एक समय धनगिरि भिक्षा को आवे।
दीर्घ काल से चिन्तित थी महतारी ॥ ले कर० ॥९४॥

अर्थ:—गर्भकाल मे ही बालक में कोई पूर्व जन्म के उत्तम संस्कार पड़े थे, अतः जन्म लेने के कुछ समय पश्चात् ही उसको जातिस्मरण ज्ञान हो गया। वह पूर्व जन्म की स्मृति करने लगा और माता का स्नेह कैसे घटाया जाय इसकी युक्ति सोचकर दिन भर रुदन करने लगा। मां संभालते-संभालते थक गई पर बालक का रुदन बन्द नही करा सकी। इससे वह बड़ी चिंतित थी। इसी बीच कुछ महीनों बाद वहां बालक के पिता मुनि धनगिरि का आगमन हुआ। वे जब भिक्षार्थ घर आये तो आर्या सुनन्दा अत्यन्त प्रसन्न हुई ॥९४॥

॥दोहा॥

धनगिरि को लख कहे मुनन्दा,
लो भिक्षा मुनिवर मेरी ।
हुई बहुत हैरान बाल से,
ले लो अब न करो देरी ॥१४॥

अर्थः—धनगिरि को देखकर मुनन्दा बोली—"महाराज ! लो मेरी यह पुत्र भिक्षा । बहुत दिनों से मैं आपके इस पुत्र के कारण हैरान थी, अब आप ही इसे संभालो, देरी मत करो" ॥१४॥

॥दोहा॥

पहले से गुरु ने कह भेजा, मिले वही तुम ले आना ।
भिक्षा में ले बाल पुत्र, धनगिरि आये गुरु के स्थाना ॥१५॥

अर्थः—गुरु ने धनगिरि को यह कहकर भिक्षार्थ भेजा था कि सचित-अचित जो भी भिक्षा में मिले ले आना । तदनुसार भिक्षा में बालक को ही लेकर धनगिरि गुरु के पास लौट आये ॥१५॥

॥दोहा॥

भार देख गुरु ने बालक का, वज्र नाम दे रखवाया ।
शय्यातरी के पास पला, फिर योग्य समय संयम ठाया ॥१६॥

अर्थः—गुरु ने शिष्य के द्वारा लाई हुई भिक्षा की झोली पकड़ी तो भार मालूम हुआ, भारी देख कर गुरु ने उस बालक का नाम वज्र रखा । गुरु ने शय्यातरी बहन को पालन करने हेतु वह बालक सौंप दिया । फिर योग्य होने पर उसे मुनिदीक्षा दी ॥१६॥

॥ लावणी ॥

सुनंदा स्नेहाकुल हो कर आई,
बाल प्राप्ति हित करने लगी लड़ाई ।
न्याय कराने राज सभा चढ़ धाई,
शय्यातरी को नृप ने लिया बुलाई ।
शय्या-तरी बालक की महतारी ॥ लेकर० ॥१५॥

अर्थः—शय्यातरी के पास बालक रोता नहीं बल्कि बहुत प्रसन्न रहता है, यह सुनकर सुनन्दा पुनः स्नेहाकुल हो गई और बालक को पुनः प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करने लगी। वह पुत्र प्राप्ति के लिए राज सभा में पहुँची। तो राजा ने उसकी पुकार सुनकर शय्यातरी को बुलाया। दोनों ही राजा के पास पहुँच कर अपने-अपने अधिकार की औचित्यता प्रमाणित करने लगी ॥६५॥

॥दोहा॥

नृप ने उनकी बात श्रवण कर, न्याय करण मन धारा है।
उभय पक्ष के जोर शोर में, सत्य बाल पर डारा है ॥१७॥

अर्थ:—दोनों की बात सुनकर राजा ने न्याय करने की सोची, पर दोनों ओर की युक्तियां सबल थीं। उन पर से निर्णय करना सम्भव नहीं था। अतः राजा ने यही उचित समझा कि बालक पर ही न्याय का भार डाला जाय जहाँ वह रहना चाहे उसी के पास उसे रहने दिया जाय ॥१७॥

॥दोहा॥

सुनंदा ने दिये खिलौने, वज्र न उन पै ललचाया।
धर्म उपकरण देख संघ के, हर्षित मन लेने धाया ॥१८॥

अर्थः - नियत समय पर न्याय लेने दोनों पक्ष जब राज सभा में उपस्थित हुए, तब सुनन्दा ने पुत्र को आकर्षित करने के लिये खिलौने और मिठाई आदि उसके सामने रक्खे, पर बालक उधर आकर्षित नहीं हुआ। पर जब संघ की ओर से शय्यातरी ने छोटा रजोहरण और पात्र प्रस्तुत किये तो तुरन्त ही बालक ने उन्हें लेने को हाथ बढ़ाया। इस पर से राजा ने घोषित कर दिया कि क्योंकि बालक पात्र आदि लेना चाहता है। अतः शय्यातरी ही इसको रख सकती है ॥१८॥

॥ लावणी ॥

धनगिरि के प्रिय शिष्य वज्र हुए नामी,
सार्थ बना कर देव परीक्षा धामी!
सूक्ष्म मेंढ़की देख कुटी में ठहरे,

लक्षण से कर ज्ञान पिण्ड नहीं बहरे ।
देख एषणा गुर संतोषा भारी ।। लेकर० ।।९६।।

अर्थः—धनगिरि के परमप्रिय शिष्य वज्र बड़े नामी आचार्य हुए । किसी समय एक देव ने सार्थ बनाकर बाल मुनि की परीक्षा करने की ठानी । उसने वसति की रचना कर भिक्षा के लिये प्रार्थना की । असामयिक जल वर्षा से भूमि पर अगणित मेंढ़कियां घूमने लगीं, जिन्हें देख कर मुनि कुटी में ठहर गये, भिक्षा को नहीं गये । जब वर्षा की बाधा दूर हुई तो आगे बढ़े पर भिक्षा में विना मौसम की वस्तुएं देख कर विचार किया और लक्षणों से देव माया समझकर आहार ग्रहण नहीं किया । उनकी इस ऐषणा वृत्ति को देखकर देव बड़ा प्रसन्न हुआ ।

।। लावणी ।।

प्रतिभाशाली देख गुरु ने सोचा,
बाल मुनि का कौशल लख आलोचा ।
ग्रामान्तर विचरण को आप पधारे,
मुनिजन को अनुयोग वज्र अवधारे ।
कर सब का सतोष हुए अधिकारी ।। लेकर० ।।९७।।

अर्थः-वज्रमुनि की शास्त्रीय ज्ञान प्रतिभा अच्छी थी । एकदिन गुरुके बाहर जाने पर वे मुनियों के वेष्टनों को सामने रखकर शास्त्र वाचना करने लगे । ज्योंही आचार्य के आने का संकेत मिला वे वेष्टनों को एक तरफ रखकर तत्काल आये और उन्होंने आचार्य के चरणों का प्रमार्जन किया । आचार्य ने दूर से ही सब हाल देख लिया था अतः वे बाल मुनि की योग्यता से प्रसन्न हो सोचने लगे कि इसकी योग्यता का विकास करना चाहिये । कुछ दिनों के लिये आचार्य स्वयं तो आसपास के गांवों में बिहार को निकल पड़े और शिष्यों की शास्त्र वाचना के लिये वज्र मुनि को नियुक्त कर गये । वज्र मुनि की शास्त्र वाचना इतनी रुचिकर और बोधप्रद रही कि उन्होंने शीघ्र ही सभी शिष्यों का आदर प्राप्त कर लिया ।।९७।।

॥ लावणी ॥

पूर्णज्ञान हित भद्रगुप्त प जाओ,
बोले गुरुवर ज्ञान अपूर्ण मिलाओ।
उज्जैनी में ज्ञान प्राप्त कर आये,
सिंह गिरि ने भी आचार्य बनाये।
विचरत आये पाटलिपुर यशधारी ॥ लेकर० ॥९८॥

अर्थः–आर्य वज्र मुनि की योग्यता देखकर एक बार इनके गुरु धनगिरि ने कहा–"वत्स ! यदि पूर्वों का ज्ञान सीखना है तो अब आचार्य भद्रगुप्त के पास जाओ, वहाँ तुम्हे ज्ञान की प्राप्ति हो सकेगी।"

आर्य वज्र ने गुरु के आदेशानुसार उज्जयिनी जाकर भद्रगुप्त से पूर्वों का ज्ञान संपादन किया। सिंहगिरि ने भी जब इन्हें सुयोग्य पाया तो आचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर सम्मानित किया। आचार्य हो कर वज्र स्वामी एकदा विचरते हुए पाटलिपुत्र पहुंचे ॥९८॥

॥ लावणी ॥

धन्य श्रेष्ठि की सुता रुक्मिणी मोही,
क्रोड़ रत्न संग कन्या लो कहे सोही।
बोले मुनि जो पुत्री मम अनुरागी,
हो वह भी संयम पथ की शुभ रागी।
अटल प्रतिज्ञा थी मुनिवर की भारी ॥ लेकर० ॥९९॥

अर्थः—पाटलीपुत्र में धन्य सेठ की पुत्री रुक्मिणी ने जब आर्य वज्र की प्रशंसा सुनी तो वह उन पर मुग्ध हो गई और उसने यह प्रतिज्ञा करली कि यदि व्याह करूंगी तो आर्य वज्र के साथ अन्यथा कुवांरी रहूँगी। पुत्री के विचार समझ कर सेठ ने आर्य वज्र से कहा—"क्रोड़ रत्नों के साथ इस कन्या को आप स्वीकार करो।"

मुनि ने स्पष्ट कह दिया, "यदि तुम्हारी पुत्री मुझ पर अनुरागिणी है तो वह भी संयम ग्रहण कर सकती है।"

मुनिवर की ऐसी अटल निस्पृहता देखकर उन सबको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥९९॥

॥ लावणी ॥

धन्य महा मुनिराज धीर व्रत धारी,
विपत्काल में रखा साहस भारी।
सावज्ज पथ का गमन दिया है टारी,
जावें हम उनके चरणों बलिहारी।
वज्रसेन उनके थे पट अधिकारी॥ लेकर० ॥१००॥

अर्थः ऐसे ज्ञान क्रिया के धनी निस्पृह मुनि को धन्य है जिन्होंने एक समय दुष्काल पीड़ित क्षेत्र में विहार करते हुए शुद्ध भिक्षा न मिलने पर भी धीरज नहीं खोया। एवं सावद्य मार्ग का उपयोग भी नहीं किया वल्कि इसके वदले में अनशनपूर्वक प्राण त्याग करना श्रेष्ठ समझा। ऐसे त्यागी संतों की वार-बार बलिहारी है।

इनके पट्ट पर वज्रसेन आचार्य हुए।

आर्य वज्र का भविष्य सूचन और जिनदत्त की दीक्षा

॥ लावणी ॥

कालदोष लख वज्रसेन से बोले,
लक्ष पाक भोजन में जो विष घोले।
अगले दिन ही दुकाल बाधा मिटसी,
सो पारक में धर्मलाभ भी मिलसी।
पुत्र चार संग जिनदत्त दीक्षा धारी॥ लेकर० ॥१०१॥

अर्थः आचार्य आर्य वज्र ने देश में व्याप्त भयंकर दुष्काल की उस समय की स्थिति को देखकर वज्रसेन के सामने भविष्य वाणी की कि जब किसी को तुम लक्षपाक भोजन में विष मिलाते देखो, तब दूसरे ही दिन तुम दुष्काल का अंत समझना, देश देशान्तर से उनको प्रभूत अन्न पहुँच जावेगा।

पूर्व ज्ञान के बल से उन्होंने आर्य वज्रसेन से यह भी कहा कि सोपारक नगर में ही तुम्हें धर्म का लाभ भी मिलेगा। ऐसा ही हुआ और सोपारक के सेठ जिनदत्त ने अपने चार पुत्रों के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली। उन चारों पुत्रों के नाम से चंद्र, नागेन्द्र, निर्वृत्ति और विद्याधर नाम की चार शाखाएं चल पड़ी ॥१०१॥

॥ लावणी ॥

शिष्यों के निर्वाह हेतु मुनि बोले,
विद्या से ला, अन्न ६रु तुम खोले।
कहे शिष्य दूषित भोजन नहिं लेना,
संयम बिन हम सब को जीवन देना।
मुनियों के मन मे साहस था भारी ॥लेकर०॥१०२॥

अर्थः—उस समय देश में सर्वत्र व्याप्त भयंकर दुर्भिक्ष के कारण श्रमण साधुओं को शुद्ध भिक्षा मिलना अत्यन्त कठिन हो गया था। ऐसी परिस्थिति में अपने शिष्यों को दुर्लभ शुद्ध भिक्षा के कष्ट से बचाने के लिये आचार्य वज्रसेन ने उनसे कहा—"विद्या बल से तुम चाहो तो, तुम सबके लिए शुद्ध आहार उपलब्ध करादूं ?"

परन्तु शिष्यों ने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने विद्या बल का दुरुपयोग करने की अपेक्षा अनशन करके प्राण त्याग देना अधिक उत्तम समझा। कितना बड़ा साहस था ॥१०२॥

सोपारक की घटना इस प्रकार हैः -

॥ लावणी ॥

वीरकाल छु बीस सेन के युग में,
सोपारक का सेठ ख्यात था जग में।
काल व्याल से पीड़ित विष घोलावे,
देख मुनि को कहा अमिश्र दिलावे।
जान मुनि ने हाल दिया दुख टारी ॥लेकर०॥१०३॥

अर्थ:—वीर सम्वत् ६२० में सोपारक नगर के एक प्रसिद्ध जैन धर्मानुयायी सेठ जिनदत्त ने, उस समय देश में सर्वत्र व्याप्त भयंकर दुष्काल से अत्यन्त संतप्त हुए अपने परिवार के दुख से दुखित होकर एक दिन अपनी धर्मपत्नी ईशरी देवी के साथ परामर्श करके यह निर्णय किया कि अब तो इस असह्य दुष्काल के दुख से छुटकारा पाने के लिये अपने सम्पूर्ण परिवार के साथ विषपान करके इस शरीर का अन्त कर लेना चाहिये। निर्णयानुसार जिस दिन सारे परिवार के लिये अत्यन्त कठिनाई से उपलब्ध थोड़े बहुत बने हुए लक्ष पाक भोजन में वे संखिया मिला रहे थे कि संयोग से उसी समय वज्रसेन मुनि थोड़ी बहुत शुद्ध भिक्षा मिलने की आशा से उसी सेठ के घर पहुंचे।

विष मिश्रित लक्ष पाक भोजन की बात जानकर उन्हें अपने गुरु आचार्य वज्र की भविष्य वाणी स्मरण हो आई। इस पर से मुनि वज्रसेन ने सेठ से कहा कि इस विष मिश्रित भोजन के करने की अब आवश्यकता नहीं है। इतने दिन कष्ट में निकाले हैं तो एक दिन और निकाल दो। कल प्रभूत मात्रा में अन्न उपलब्ध हो जायगा। यह कहकर मुनि ने उस परिवार को मौत के मुंह में जाने से बचा लिया ॥१०३॥

॥ लावणी ॥

देख अन्न जिनदत्त ईसरी आये,
चार तनययुत गुरु चरणों सिर न्हाये।
प्रतिभाशाली शिष्य चतुर्दिग् गाजे,
चन्द्र--गच्छ तब से ही जग में छाजे।
चारों की शाखाएं जग विस्तारी ॥ले कर०॥१०४॥

अर्थ:—मुनि के कथनानुसार अगले दिन देश देशान्तर से आया हुआ धान्य देखकर जिनदत्त और ईसरी बड़ी श्रद्धा के साथ मुनि के पास आये और चारों पुत्रों के संग मुनि चरणों में दीक्षित हो गये। प्रतिभाशाली चारों शिष्यों के नाम पर चन्द्र, नागेन्द्र, निवृत्ति और विद्याधर ये चार श्रमण गच्छ चले। कहा जाता है कि इन्हीं चार के विस्तार से अन्य ८४ गच्छ निकले ॥१०४॥

उस समय के निन्हव

॥ राधे० ॥

रोहगुप्त की बात कहूं अब, कैसे मन में भ्रान्ति हुई।
सत्य मार्ग पर नहिं आने से, मिथ्या मत की वृद्धि हुई ॥१६॥

अर्थ:—आर्य रोहगुप्त के मन में कैसे भ्रान्ति हुई और समझाने पर भी सत्य मार्ग पर नहीं आने से कैसे मिथ्या मत की वृद्धि हुई, यह बताया जा रहा है ॥१६॥

॥ लावणी ॥

आर्यगुप्त के शिष्य बड़े कई ज्ञानी,
रोहगुप्त ने की अपनी मनमानी।
वर्ष पांच सौ चमालीस की वेला,
अंतरंजिकापुर में हो गया मेला।
पोट्टशाल से चर्चा की की तैयारी ॥ले कर०॥१०५॥

अर्थः—आर्यगुप्त के अनेक ज्ञानी ध्यानी शिष्य हुए, उनमें एक रोहगुप्त भी थे, जिनने अपनी मनमानी की। वीर संवत् ५४४ में अंतरंजिका नगरी में परिव्राजक पोट्टशाल ने चर्चा का आह्वान किया। नगर में उसके पांडित्य की महिमा और शास्त्रार्थ की बात फैली तो कुतूहलवश चारों ओर लोगों का बड़ा मेला सा लगा रहने लगा ॥१०५॥

॥ लावणी ॥

भूप बलश्री था नगरी का नायक,
श्री गुप्त पधारे विचरते वहां मुनिनायक।
ग्रामान्तर से आर्य रोह चल आये,
परिव्राजक का पड़ह मान्य करवाये।
आकर गुरु से कही बात जब सारी ॥ले कर०॥१०६

अर्थः महाराज बलश्री अंतरंजिका के प्रजापालक शासक थे। संयोगवश आचार्य श्री गुप्त भी विचरते हुए वहां पधार गये। उस समय

रोहगुप्त जो पास के दूसरे गांव में थे, वह भी वहां चले आये। परिव्राजक की ओर से शास्त्रार्थ का डंका बज रहा था। जब रोहगुप्त ने इसे सुना तो जोश में पड़ह झेल लिया और कहा—"मैं चर्चा करूंगा।"

मिलने पर उसने सारी बातें अपने गुरु आचार्य से निवेदन कीं ॥१०६॥

॥ लावणी ॥

बोले गुरुवर बात भली नहिं कीनी,
वादी की शक्ति नहिं तुमने चीन्ही।
विद्या से उन्मत्त पराजित हो कर,
पीड़ा देगा विद्या से वह पामर।
गुरु ने दी विद्या रक्षणहित भारी ॥ले कर०॥१०७॥

अर्थः—रोहगुप्त की बात सुनकर आचार्य बोले—"शिष्य! पोट्टशाल से शास्त्रार्थ स्वीकार कर तूने अच्छा नहीं किया। वह मायावी और शक्तिमान् है। तुमने उसको पहचाना नहीं है। वह यदि पराजित भी हो गया तो विद्याबल से तुमको कष्ट देगा। किन्तु शास्त्रार्थ स्वीकार कर लिया है अतः तुम्हारे संरक्षण हेतु सात विद्याएं मैं तुम्हें देता हूं। इनका आवश्यकतानुसार उपयोग करने से तुम हार से बच जाओगे ॥१०७॥

॥ लावणी ॥

वादी बोला तत्त्व दोय है जग में,
कहा रोह ने तीजा देखो पग में।
जीव, अजीव, नोजीव जान लो ऐसे,
कटी पुच्छ हलचल करती यह कैसे।
पोट्टशाल की हो गई हार करारी ॥ले कर०॥१०८॥

अर्थः—शास्त्रार्थ आरंभ करते हुए वादी ने पूर्वपक्ष रखा—"संसार में दो तत्त्व हैं। जीव और अजीव यानि जड़ एवं चेतन।"

रोहगुप्त ने इसका खण्डन करते हुए कहा—"नहीं, जीव अजीव और

नोजीव–नोअजीव ऐसे तीन तत्त्व मानने चाहिये। जैसे छिपकली की पूंछ कटने पर भी वह हिलती रहती है और तेज बटी हुई यह रस्सी भूमि पर घूम रही है। पर इसको जीव या अजीव नही कह सकते क्योंकि इसमें क्रिया है।''

पोट्टशाल इसका उत्तर नही दे सका, अतः उसकी हार हो गई।।१०८।।

।। दोहा ।।

रोहगुप्त की विजय श्रवण कर, गुरुवर ने आदेश दिया।
राज सभा में सत्य बता कर, भ्रान्ति दूर कर दो भाया।।२०।।

अर्थः—रोहगुप्त ने जब गुरु से आकर जीतने की बात कही, तब गुरु बोले—"गुप्त! तीसरी राशि कायम कर के तूने ठीक नही किया। यह शास्त्र विरुद्ध है। अतः राज सभा में जाकर इसे स्पष्ट कर दो, ताकि लोग भ्रान्ति में नही पड़े"।।२०।।

।। लावरणी ।।

रोहगुप्त ने गुरु आज्ञा नहीं मानी,
राजा को गुरु ने कह दी सब छानी।
राजसभा में निग्रह करना ठाना,
चला वाद षण्मास न तत्त्व पिछाना।
गुरु चरणों में विनय करी सुखकारी।।लेकर०।।१०९।।

अर्थ—जब रोहगुप्त ने समझाने पर भी गुरु आज्ञा स्वीकार नहीं की तब आचार्य ने राजा को सारी सही स्थिति से अवगत कराया और राजसभा में शिष्य से शास्त्रार्थ कर सत्यासत्य का निर्णय करना निश्चित गया।

गुरु शिष्य के बीच छः मास तक राज्य सभा में वाद-विवाद चलता रहा। भिन्न-भिन्न प्रकार से समझाने पर भी शिष्य ने अपना हठ नहीं छोड़ा, तब राजा ने विनयपूर्वक गुरु से प्रार्थना कि—"भगवन् निर्णय शीघ्र हो तो अच्छा है"।।१०९।।

॥ लावणी ॥

राज कार्य में विघ्न देख गुरु बोले,
कल ही निग्रह करूं सत्य जग तोले ।
प्रात सभा में कहा हाट में देखो,
मिला न तीजा द्रव्य परखलो लेखो ।
शत पर चंवालीस प्रश्न किये भारी ॥लेकर०॥११०॥

अर्थः—गुरु ने भी जब परिणाम शीघ्र निकलता नहीं देखा, तब सोचा कि राजकार्य में व्यर्थ ही इस चर्चा के लम्बी होते जाने के कारण बाधा हो रही है। अतः शास्त्रार्थ को आगे न बढ़ा कर कल ही समाप्त कर देना चाहिये। जनता को मालूम हो जाय कि सत्य क्या है।

प्रातःकाल चर्चा चलते ही उन्होंने कहा—"कुत्रिका पण जो एक दैवी हाट है, उसमें संसार भर की चीजें मिलती हैं, वहां से नोजीव, नो अजीव मंगाया जाय।"

पर खोजने पर भी जीव और अजीव के अतिरिक्त तीसरी वस्तु वहां नहीं मिली। अतः निश्चय हुआ कि संसार में दो ही तत्त्व-पदार्थ हैं, तीसरा नहीं। गुरु शिष्य के बीच १४४ प्रश्न और उत्तर हुए। अन्त में गुरु की विजय हुई और शिष्य पराजित हो गया ॥११०॥

॥लावणी॥

दर्शन मोह के उदयगुप्त ने धारा,
षट् पदार्थ का मन में जमा विचारा।
भूप साक्षि गुरु ने निग्रह कर डाला,
गुरु विरोध से दिया स्वदेश निकाला।
वैशेषिक मत किया जगत में जहारी ॥लेकर०॥१११॥

अर्थः—गुरु ने राजसभा में रोहगुप्त को युक्तिपूर्वक निरुत्तर किया फिर भी मिथ्यात्वमोह के उदय से उसने सत्य स्वीकार नहीं किया। उल्टे षट् पदार्थ का सिद्धान्त लेकर मिथ्या मत का प्रचार करने लगा। तब गुरु आज्ञा की अवज्ञा करते देखकर राजा ने उसे देश-बाहर कर दिया। रोहगुप्त

ने भी आवेश में आ कर वैशेषिक मत प्रारम्भ किया, जिसका अपर नाम "षडलूक" है। इनके मत में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष और समवाय ऐसे छः ही द्रव्य माने गये है ।।१११।।

॥लावणी॥

द्रव्य गुणादिक तत्त्व षट्क वो माने,
महोदय से सत्य मर्म नहिं जाने।
वीर काल शत पंच अठचालिस जानो,
गये स्वर्ग श्रीगुप्तसूरि बलहानो।
रोहगुप्त ने मिथ्या मत विस्तारी ।।लेकर०।।११२।।

अर्थः—द्रव्य गुणादिक छः ही तत्त्व उसने मान्य किये। मोह कर्म के प्रबल उदय से उसने धर्म के सही मर्म को नही समझा। वीर निर्वाण सवत् ५४८ में जब आचार्य श्रीगुप्त का स्वर्गवास हो गया तब शासन का बल कमजोर हुआ और रोहगुप्त को मिथ्या मत के प्रचार का खुलकर अवसर मिला ।।११२।।

सातवां निन्हव

॥ लावणी ॥

सप्तम निन्हव गोष्ठामाहिल जानो,
वर्ष पांच सौ चौरासी पहिचानो।
पूर्व बांचते अबद्धदृष्टी आई,
बंधभेद में सहज समझ नहीं आई।
रक्षित के शासन में शंका भारी ।।लेकर०।।११३।।

अर्थः—आर्य वज्र और वज्रसेन के बीच के काल में आर्य रक्षित और दुर्बलिका पुष्यमित्र नामक दो युग प्रधान आचार्य हुए।

आवश्यक वृत्ति के अनुसार इनके स्वर्गवास के बाद वीर संवत् ५८४ में सातवें निन्हव गोष्ठा माहिल की उत्पत्ति हुई। पूर्व का वाचन करते हुए

इनको अबद्ध दृष्टि उत्पन्न हुई। बंधभेद की बात इनके समझ में नहीं आई। फलस्वरूप आर्य रक्षित के शासन में ये शंकाशील रहे और सत्य को छिपाने से निन्हव कहे गये ॥११३॥

॥लावणी॥

कर्मबन्ध के विषय शास्त्र बतलावे,
माहिल के मन मिथ्या तर्क सुहावे।
बद्ध, पुट्ठ, सुनिकाचित बंध बतावे,
क्षीर, नीर या कंचुकी सम समझावे।
एक रूप में कैसे हो अधिकारी ॥लेकर०॥११४॥

अर्थः—शास्त्र में कर्म-बन्ध के सम्बन्ध मे युक्ति पूर्वक समझाया गया है। फिर भी माहिल के समझ में बात नही आई। वह वैसे ही मिथ्या तर्क करता रहा कि बंध के बद्ध, स्पष्ट और निकाचित रूप से तीन भेद किये गये हैं एवं आत्मा के साथ कर्म का बंध क्षीर—नीरवत् है या सर्प—कचुकी सम? और यदि एकरूप नीर-क्षीरवत् माना जाय तो फिर आत्मा शुद्ध बुद्ध पद को कैसे प्राप्त करेगा? ॥११४॥

उत्तर

॥ लावणी ॥

एक रूप होकर भी जल सूकावे,
आत्मप्रदेश से कर्म क्रिया से जावे।
कंचुकी सम संबंध न युक्त कहावे,
सभी मुक्त हो जीव भूल क्यों आवे।
विध्य आदि ने युक्ति बताई सारी॥ लेकर० ॥११५॥

अर्थः—दूध में पानी एक रूप होकर भी अग्नि के संयोग से सूख जाता है। वैसे कर्म भी करणी द्वारा आत्मप्रदेश से छूट जाते है। अतः दूध पानी की तरह आत्मा के साथ कर्म का बंध माना गया है। कर्म बन्ध में कचुकी का उदाहरण उचित नही। वैसा मानने पर सभी जीव मुक्त रहेंगे,

फिर कर्म का बन्धन कैसे होगा ? इस प्रकार विंध्य आदि मुनियों ने युक्ति से समझाया ।।११५।।

गोष्ठा माहिल का परिचय

।। लावणी ।।

एक समय गणि विचरत दशपुर आये,
अक्रियवादी मथुरा में सुनवाये ।
संघ मिला वादी न दृष्टि में आया,
रक्षित पं संघाट भेज कहलाया ।
वाद हेतु गोष्ठामाहिल बलधारी ।। लेकर० ।।११६।।

अर्थः—आर्य रक्षितसूरि एक बार दशपुर नगर पधारे । उस समय मथुरा में अक्रियावादियों का जोर था । संघ एकत्र हुआ पर कोई समर्थ वादी दृष्टिगोचर नहीं हुआ । जो उनको उत्तर दे सकता । तब आचार्य रक्षित के पास संदेश भेजकर संघ ने उनको मथुरा बुलवाया । आचार्य स्वयं तो न आ सके, पर अपने योग्य शिष्य गोष्ठामाहिल को वाद के लिए वहाँ भेजा क्योंकि उस समय परिस्थिति के अनुसार गुरु ने उसे ही योग्य समझा । गोष्ठामाहिल प्रतिभाशाली थे और वाद में भी अत्यन्त कुशल थे ।।११६।।

।।लावणी।।

गुरु आज्ञा से गोष्ठामाहिल जावे,
तर्कबुद्धि से वाद विजय कर आवे ।
भक्तजनों ने हर्षित हो ठहराया,
मुनि ने वर्षाकाल वहीं पर ठाया ।
गणनायकहित गुरु ने बात विचारी ।। लेकर० ।।११७।।

अर्थः—गुरु की आज्ञा पाकर गोष्ठामाहिल शास्त्रार्थ हेतु मथुरा गये । अपने तर्कबल पर वाद में विजयी होकर वे गुरु के पास लौट आये । उनकी विद्वत्ता से प्रभावित हो संघ ने वर्षाकाल के लिये आग्रह किया तो मुनि भी आग्रहवश वहीं वर्षाकाल के लिये विराज गये । आचार्य आर्य रक्षित ने

अपने शरीर की स्थिति क्षीण देखकर उत्तराधिकारी के लिये संघ में विचारणा की। उस समय मुनिमण्डल में उत्तराधिकारी के लिये मतभेद था ॥११७॥

उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में मतभेद

॥ लावणी ॥

दुर्बलिका को गणि ने लायक समझा,
पर मुनिजन के मन को प्रिय था दूजा।
भेद बताकर गणि ने सब समझाया,
दुर्बलिका को नायक मान्य कराया।
यथायोग्य शिक्षा दी जनहितकारी ॥ लेकर० ॥११८॥

अर्थः—आचार्य रक्षित ने दुर्बलिका पुष्य को योग्य समझा किन्तु मुनियों का इसमें मतभेद था। आय रक्षित के (१) धृत पुष्यमित्र (२) वस्त्र-पुष्य, (३) दुर्बलिका पुष्य, (४) विध्य मुनि, (५) फल्गु रक्षित और (६) गोष्ठा माहिल आदि मुख्य शिष्य थे। मुनियों मे से कुछ फल्गु रक्षित को, तो कुछ गोष्ठामाहिल को आचार्य बनाने के पक्ष में थे।

आचार्य ने सबको समझाने के लिये युक्ति निकाली। उन्होंने तीन घड़े मंगवाये, एक में उड़द, दूसरे में तेल और तीसरे में घी भरवाया, फिर उन घड़ों को उल्टा करवाया तो उड़द का घड़ा बिलकुल साफ था। तेल वाले में कुछ लगा रहा और घी वाल में वहुत लगा रहा। उन्होंने कहा, "दुर्बलिका में उड़द के घड़े की तरह मैं खाली हो गया हूँ।"

आचार्य का भाव समझ कर सबने दुर्बलिका पुष्य को अपना नायक स्वीकार किया। दुर्बलिका पुष्यमित्र का ज्ञानाभ्यास अनुकरणीय था। आचार्य ने दुर्बलिका को गण की भोलावण दी और साधुओं को भी यथा-योग्य शिक्षा दी ॥११८॥

॥ लावणी ॥

सूरि और मुनिगण को सीख करावे,
अनशन करके आर्य स्वर्ग पद पावे।

स्वर्गवास सुन गोष्ठामाहिल आये,
आकर पूछा गणधर किसे बनाये।
हुई हकीकत कही संघ ने सारी ।। लेकर० ।।११६।।

अर्थ:—नवनिर्वाचित आचार्य और मुनिगण को शिक्षा देकर आर्य रक्षित अनशनपूर्वक स्वर्गस्थ हो गये। गोष्ठामाहिल भी आचार्य का स्वर्गवास सुन कर आये। गणाचार्य के लिये पूछा तो ज्ञात हुआ कि दुर्बलिका को आचार्य ने गणाचार्य नियुक्त किया है। संघ से उस विषय की सब जानकारी गोष्ठामाहिल को मिली ।।११६।।

॥लावणी॥

सुन कर वार्ता पृथक् स्थान स्वीकारा,
कहा सभी ने पर नहीं एक विचारा।
सूत्रवाचना करे अलग मनभावे,
अर्थ पोरसी में न श्रवण को आवे।
गणनायक से मन में रखता खारी ।। ले कर० ।।१२०।।

अर्थ:- संघ में सारी वस्तु स्थिति जानकर गोष्ठामाहिल को खेद हुआ। वे सबके कहने पर भी वहां नहीं ठहर कर अलग उपाश्रय में ठहरे। सूत्र पोरसी में स्वाध्याय अलग करने और अर्थ पोरसी में भी गणाचार्य के पास सुनने को नहीं आते। गणाचार्य से मन में द्वेष रखने लगे। सचमुच मोह का तीव्र उदय बड़े-बड़े ज्ञानियों को भी चक्कर में डाल देता है ।।१२०।।

॥ लावणी ॥

गणी के पीछे विंध्य वाचना करते,
पूर्व आठवां वे भी आ वहां सुनते।
मोह उदय से उल्टी मत ली झाली,
आत्मा का नहीं होता बंध निहाली।
विंध्य मुनि ने सूरि को कह डारी ।। ले कर० ।।१२१।।

अर्थ :- गणाचार्य की वाचना हो जाने के बाद जब विंध्य मुनि अर्थ

वाचना करते तब गोष्ठामाहिल भी वहां आकर आठवें पूर्व का भाव श्रवण करते किन्तु कांक्षा मोह के उदय से उन्होंने सुनते हुए भी विपरीत ग्रहण किया। निश्चय मे आत्मा का कर्म मे बंध नहीं होता, इस नयवचन को बिना समझे उन्होंने एकान्त पकड़ लिया। विन्ध्य मुनि ने यह बात गणाचार्य को कह सुनायी ॥१८१॥

॥लावणी॥

समाधान हित सूरी ने समझाया,
अन्य गच्छ के स्थविरों से चर्चाया।
संघ अधिष्ठायक सुर सुमिरण कीना,
जिनवचनों से उसने निर्णय दीना।
देख आग्रही किया संघ ने बहारी ॥ ले कर० ॥१८२॥

अर्थ:—गोष्ठामाहिल का समाधान करने के लिये आचार्य दुर्बलिका पुष्य ने उनको विविध प्रकार से समझाने का प्रयत्न किया। अन्य गच्छ के स्थविरों के साथ उनकी चर्चा कराई किन्तु उनका समाधान नहीं हुआ। तब उन्होंने शासन के अधिष्ठायक देव का स्मरण किया। उसने प्रत्यक्ष होकर जिनवचनानुसार सत्य निर्णय दिया। फिर भी गोष्ठामाहिल ने अपने आग्रह को नहीं छोड़ा। फलस्वरूप संघ ने उसको आज्ञाबाहिर घोषित कर दिया ॥१८२॥

संप्रदाय भेद

॥ लावणी ॥

शासन में हुआ भेद कहूं अब सुन लो,
छः सौ नव की साल ध्यान में धर लो।
जिन शासन का संघ एक था तब तक,
प्रकट हुआ यह भेद नहीं था अब तक।
बीज फूट कर कैसे शाख प्रसारी ॥ ले कर० ॥१८३॥

अर्थः—कालदोष से कालान्तर में जिन शासन में दुर्बलता आई और वीर निर्वाण सम्वत् ६०६ में संघ की एकता में एक दरार पड़ गई।

जैन संघ श्वेताम्बर और इस तरह दिगम्बर के दो भागों में बंट गया। यह भेद कैसे और कहां पड़ा, यह संक्षेप में बतलाया जा रहा है। अभी तक जिन शासनमें एक ही संघ था, उसमें कोई सम्प्रदाय भेद नहीं था। वीर सं० ६०६ में भेद का बीज फूट कर कैसे फला फूला, इसका इतिहास इस प्रकार है ॥१२३॥

॥ लावणी ॥

आर्य कृष्ण आचार्य एक दिन आये,
पुर रथवीर के दीप उद्यान सुभाये।
राजमान्य शिवभूति पुरोहित जानो,
राजकार्य से काल अकाल नउ मानो।
गृह देवी सत्कार करत यों हारी ॥ लेकर० ॥१२४॥

अर्थः- रथवीरपुर में एक दिन आचार्य आर्य कृष्ण पधारे और नगर के दीप उद्यान में विराजमान हुए। वहां का राजमान्यपुरोहित शिवभूति जो राजकार्य में बड़ा दक्ष था, वह राजकार्य से समय बेसमय घर पहुँचता। पुरोहितानी को प्रतिदिन उनकी प्रतीक्षा करनी पड़ती। एक दिन शिवभूति रात को बहुत देर से आये, जब कि पुरोहितानी की आँखों में नींद भरी हुई थी। पुरोहित की इस देर से आने की आदत से गृहिणी दुःखी थी। एक दिन उसने अपनी सास से अपने इस दुःख की सारी गाथा कह सुनाई ॥ १२४ ॥

॥लावणी॥

बोली मां पुत्री न चित्त अकुलाओ,
द्वार बन्द बस वादन पै करवाओ।
जागृत रह कर मै सुत को समझाऊं,
जब आवेगा सच्ची सीख सुनाऊं।
आने पर मां ने नहीं द्वार उघारी ॥ ले कर० ॥१२५॥

अर्थः– पुत्रवधू की बात सुनकर सासू ने कहा—"बेटी चिंता की कोई बात नहीं। तुम दस बजे बाद द्वार बंद कर देना। आज तुझे प्रतीक्षा में बैठे रहने की आवश्यकता नहीं है। मै जागूंगी और जब शिवभूति आवेगा तो उससे बात करूंगी।"

सासू के कथनानुसार पुरोहितानी सो गई। प्रतिदिन की भाँति अर्द्ध रात्रि के बाद शिवभूति ने आकर द्वार खटखटाया पर मां ने दरवाजा नही खोला।

पुकारने पर वह बोली—"इतनी रात जिनके द्वार खुले हों वहीं जाओ। मेरे यहाँ इस तरह बे समय आने वाले के लिये स्थान नहीं है" ॥१२५॥

॥लावणी॥

दीक्षा ले कर गुरु संग जनपद जावे,
विचरत सहसा फिर उस पुर में आवे।
हर्षित हो राजा ने भेंट दिलायी,
मुनि ने उसको आदर से रखवाया।
मूल्यवान् पट पर थी ममता भारी॥ ले कर० ॥१२६॥

दीक्षा

अर्थः—मां के उत्तर से निराश हो कर शिवभूति लौट पड़े और नगर में घूमते हुए जैन उपाश्रय का द्वार खुला देखा तो वे वहाँ गये और आर्य कृष्ण के पास उपदेश श्रवण कर दीक्षित हो, ग्रामान्तर की ओर दूसरे दिन विहार कर गये। फिर विचरते हुए एकदिन सहसा रथवीरपुर आये। राजा को मालूम हुआ तो हर्षित हो उसने मुनि को वंदना की और एक बहुमूल्य रत्न कम्बल मुनि को भेंट रूप में अर्पण किया। मुनि ने भी राजा की भेंट को आदर से स्वीकार किया। अधिक मूल्यवान् होने से मुनि की उस पर ममता रहने लगी, अतः उन्होंने बड़ी हिफाजत से उसको बांध कर रखा ॥१२६॥

॥लावणी॥

जान गुरु ने एक दिन छेदन कीना,
खंड खंड कर शिष्यों को दे दीना।
शिवभूति के मन में खेद अपारा,
पढ़त पूर्व को लिया उलट मत धोरा।
वस्त्र सहित का संयम नहि सुखकारी ॥ लेकर० ॥१२७॥

अर्थ - गुरु को इस बात का पता चला तो उन्होंने एक दिन उस बहुमूल्य वस्त्र के खंड खंड कर उसे अन्य शिष्यों में बांट दिया। शिवभूति ने आकर जाना तो उसके मन में इससे बहुत खेद हुआ। इस पर से पूर्व श्रुत को पढ़ते हुए उसने यह भ्रान्ति पकड़ ली कि वस्त्र सहित का संयम सुखदायी एवं निर्दोष नहीं होता ॥१२७॥

॥ लावणी ॥

मुनि मन पाया दुख प्रकट नहीं बोले,
शास्त्र श्रवण कर सहसा मन को खोले।
वस्त्र त्याग कर पूरा साधन करना,
कहे गुरु से हो तब ही भव तरना।
आकाशाम्बर मत चला हुए व्रतधारी ॥लेकर०॥१२८॥

अर्थ —गुरु के सम्मान हेतु मुनि शिवभूति बाहर से तो कुछ नहीं बोले पर मन ही मन उनको बड़ा दुख हो रहा था। एक दिन शास्त्र में जिन कल्प का वर्णन चला तब मुनि सहसा बोल उठे—"ठीक है, वस्त्र का सम्पूर्ण त्याग कर विचरना ही अपरिग्रही मुनि का मार्ग है। पक्षी पंखों को समेट कर चलता है पास में कुछ भी लेकर नहीं चलता, हमें भी वैसे ही शुद्ध मार्ग का आराधन करना चाहिये।"

इस प्रकार की धारणा से शिवभूति ने दिगम्बर परम्परा को चालू किया

॥ लावणी ॥

श्वेताम्बर अरु आकाशाम्बर कहलाये,
श्रमणसंघ में भेद तभी प्रगटाये।

हुए भक्तजन साथ संघ को तोड़ा,
मतरागी हो अर्थ शास्त्र का मोड़ा ।।
भोग रहे फल हम उसका भयकारी ।।लेकर०।।१२६।।

अर्थ: - इस प्रकार वीर निर्वाण संवत् ६०६ में श्वेताम्बर और दिगम्बर रूप से श्रमणसंघ के दो टुकड़े हो गये । मतरागी होकर दोनों ने शास्त्र के अर्थ को अपने अनुकूल मोड़ लिया । आग्रहवश जिन शासन के मर्म को भूलकर एकान्त पकड़ बैठे । उसी का कटु फल आज हम सम्प्रदाय-भेद के रूप में भोग रहे हैं । वास्तव में तो जिन शासन ने मूर्च्छा को परिग्रह का मूल माना है ।।१२६।।

।।लावणी।।

पट—धारण एकान्त परिग्रह जाना,
नारी को सम्पूर्ण त्याग नहीं माना ।
बहन उत्तरा को गणिका पट दीना,
कोट्टवीर कोडिन्य शिष्य दो कीना ।
भाष्य ग्रन्थ में लिखा हाल विस्तारी ।।लेकर०।।१३०।।

अर्थ:—शिवभूति ने वस्त्रधारण को एकान्त परिग्रह मान कर साधु के लिये उसका सर्वथा निषेध किया । गुरु ने समझाया कि सम्पूर्ण निषेध जिनकल्पी के लिये होता है और वर्तमान में संहनन की दुर्बलता से जिन कल्प विच्छेद है । तीर्थंकर भगवान् भी देवदूष्य वस्त्र रख कर यह प्रगट करते हैं कि जिन शासन एकान्त सवस्त्रवादी या अवस्त्रवादी नहीं है ।

इतना कहने पर भी शिवभूति की समझ में बात नहीं आई और वे नग्न होकर जंगल में चले गये । शिवभूति के स्नेह से उसकी बहन 'उत्तरा' भी साध्वी हो गई थी । जब वह वंदन के लिये उद्यान में गई और भाई को पूर्ण अचल देखा तो उसने भी वस्त्र त्याग दिये । भिक्षा के समय नगर की एक वेश्या ने उसको नग्न देखा तो उसने उस साध्वी को साड़ी पहना दी ।

शिवभूति के कोडिन्य और कोट्टवीर दो शिष्य हुए । इस प्रकार शनैः शनैः दिगम्बर परम्परा का प्रचार बढ़ता गया । शिवभूति के बदले

कुछ आचार्य सहसमल से दिगंवर मत की उत्पत्ति बतलाते हैं। श्वेताम्बर परंपरा के विशेषावश्यक भाष्य आदि में इसकी विशेष जानकारी उपलब्ध हैं ॥१३०॥

॥लावणी॥

समझाया पर नहीं ध्यान में आया,
सूक्ष्म दोष का दिन दिन विष फैलाया।
समझ दोष का आदि रूप संभालो,
नहिं तो होगा बढ़कर विषधर कालो॥
हमको अब हित शिक्षा लेना धारी ॥लेकर०॥१३१॥

अर्थः—शिवभूति को समझाने पर भी बात उसके ध्यान में नहीं आयी और छोटी सी बात से संघ में मतभेद का बड़ा जहर फैल गया।

यदि समझ भेद के प्रारम्भ काल में ही भ्रम मिटा दिया जाय तो आसानी से काम हल हो जाता है अन्यथा छोटा सा भ्रम भी कालान्तर में बड़ा काला विषधर हो जाता है। भूत की घटना से हमको वर्तमान में शिक्षा लेकर चलना चाहिये ॥१३१॥

॥लावणी॥

मुक्तिलाभ अम्बर से रुकता नाहीं,
मोहावरण ही सिद्धि रोकता भाई।
कर्माम्बर से दूर आतमा होवे,
सत्य समझ लो तब ही बंधन खोवे॥
शुक्ल ध्यान हो श्वेताम्बर सुखकारी ॥१३२॥

अर्थः—वास्तव में मुक्ति का अवरोध वस्त्र-अम्बर से नहीं होता। वास्तव में तो कषाय और मोह का आवरण ही मुक्ति को रोकने वाला है।

मोक्ष प्राप्ति के लिये आत्मा से मोह कर्म का अम्बर दूर करना चाहिये, उसको यदि सर्वथा दूर कर दिया तो निश्चय समझो कि आत्मा को कर्म बंधनों से मुक्ति अवश्यंभावी है।

श्वेताम्बरों का श्वेत वस्त्र शुक्ल ध्यान का प्रतीक है जो सिद्धि में सहायक होता है और वह सब परम्पराओं के लिये आदरणीय है ॥१३२॥

॥लावणी॥

सप्तवीस पट्ट चरण मार्ग रहे चाली,
चैत्यवास से बढ़ी शिथिलता भारी।
वीर काल अठयांसी में जानो,
चैत्यवास का जोर रहा नहीं छानो।
द्रव्य और जल फूल किये स्वीकारी ॥लेकर०॥१३३॥

अर्थः—वीर निर्वाण संवत् ६२० के आसपास चन्द्र सूरि से चन्द्र गच्छ या चन्द्र शाखा की उत्पत्ति हुई और सामन्त भद्रसूरि से 'वनवासो' गच्छ नाम प्रसिद्ध हुआ। ये निर्मोह भाव से वन या उद्यान में रहते इसलिये लोकों ने इस गच्छ का नाम वनवासी रखा।

वीर संवत् ६८५ में वल्लभी नगरी का भंग हुआ और ८८२ में चैत्यवास का जोर बढ़ा। जैन साधुओं के कठोर आचार की पालना में अपनी असमर्थता से कितने ही साधु शिथिल होने लगे और वे अन्त में चैत्यवासी हो कर रहने लगे।

धीरे-धीरे इस चैत्यवास परम्परा का प्रभाव बढ़ता गया और वीर सं० ८८२ में तो वह अधिक बलवती हो गई हो, ऐसा प्रतित होता है।

भगवान् महावीर से २७ पाट तक शुद्ध मार्ग चलता रहा। किन्तु चैत्यवास से साधुओं के आचार में शिथिलता का जोर बढ़ने लगा। जैसा कि उपाध्याय धर्मसागर जी ने अपनी तपागच्छ पट्टावली के पृष्ठ ६० में लिखा है—'साधु लोग मठवास की तरह चैत्यवास करते। मन्दिर के द्रव्य को अपने लिये उपयोग करते, साध्वियों का लाया हुआ आहार खाते और सचित्त फल-फूल और जल का उपयोग करने लगे।'

चन्द्र आदि शाखाओं से जैसे गच्छभेद का विस्तार हुआ वह नोचे बताया जा रहा है ॥१३३॥

॥ लावणी ॥

बड़ गच्छ आदिक हुए कई शासन में,
चरण मार्ग में भेद पड़ा गण गण में।
१२५० ११५९ १२०४
आगमियां, पूनमियां, खरतर जानो,
१२१३
अंचल से यतना कर आंचल माना।
आत्म अर्थ ना भाव घटा दुखकारी ॥लेकर॥१३४॥

अर्थ.—वीर सं० १४६४ यानि वि० सं० ९९४ में किसी समय विचरते हुए उद्योतन सूरि आबू के पास टेलिगाव पधारे और उसकी सीमा में विशाल वटवृक्ष की छाया में बैठकर शासन उदय का विचार करने लगे। उस समय शुभ मुहूर्त जान कर उन्होंने सर्वदेवसूरि को अपने पद पर प्रतिष्ठित किया। वड़ वृक्ष के नीचे पदस्थापना करने से उसको लोक में वड़गच्छ के नाम से कहने लगे। निर्ग्रन्थ गच्छ का यह पांचवां नाम हुआ।
[तपागच्छ पट्टावली पृ० १०५]

गच्छों के कारण जिन शासन में जो भेद पड़ा उसमें वड़ गच्छ आदि गच्छों में देश काल और स्थिति भेद से प्रत्येक के आचार में भी भेद पड़ता गया जो इस प्रकार है:—

सर्वदेव के बाद विनयचन्द्र उपाध्याय के शिष्य मुनि चन्द्रसूरि हुए जो शुद्ध संयमी थे, मात्र छाछ पीकर रहते थे।

उन के गुरुभाई चन्द्रप्रभु मुनि से वि० सं० ११५९ में पूनमियां गच्छ की उत्पत्ति हुई।

वैसे ही वि० सम्वत् १२०४ में खरतरगच्छ की, सं० १२१३ में आंचलिया मत की, तथा वि० सवत् १२५० में आगमिक मत की उत्पत्ति हुई।

आंचल मत की धारणा थी कि चद्दर के अंचल से यतना कर ली जाय तो मुंहपती की क्या जरूरत है। इस प्रकार शासन में गच्छ तो बढ़े पर साधना बल और आत्मार्थीपन का भाव घटता गया।

गच्छों की उत्पत्ति व विशेषता

पूर्णिमा (पूनमिया) गच्छ:—मुनि चन्द्रसूरि के गुरु भ्राता चन्द्र प्रभ ने सं० ११५९ में पूर्णिमा मत प्रकट किया। चवदस की पक्खी के स्थान पर इन्होंने पूनम को पक्खी करना प्रचलित किया। इस पर मुनि चन्द्रसूरि ने पाक्षिक सूत्र द्वारा इस मत के अनुयायियों को समझाने का प्रयत्न किया।

खरतर गच्छ की उत्पत्तिः—जिनेश्वर सूरि के शिष्य जिनवल्लभ बड़े विद्वान् और प्रतिभाशाली थे। कहा जाता है कि जिनेश्वर चैत्यवासी हो गये।

जिन वल्लभ ने एक दिन दशवैकालिक सूत्र का स्वाध्याय करते समय साधु का आचार जानकर गुरु से पूछा—"भगवन्! अपने आचार और शास्त्र के वचन में तो फर्क है।"

गुरु ने अपनी कमजोरी बतलाई।

जिन वल्लभ ने सत्य जानने हेतु अभय देव सूरि के पास जाकर शास्त्र का अध्ययन किया और पूर्ण गीतार्थ हो गये।

पट्टावली के अनुसार सं० १२०४ में जिनदत्त सूरि से खरतर गच्छ की स्थापना कही जाती है, परन्तु प्रभावक चरित्र में कूर्चपुर गच्छीय जिनेश्वर सूरि को मुनि चैत्यवास को शास्त्रार्थ में पराजित करने वाला कहा गया है। उनके अनुसार दुर्लभराज की सभा में चैत्यवास के साथ वाद-विवाद में उनकी विजय होने से दुर्लभराज ने कहा—"ये खरे हैं अर्थात् खरतर कठोर करणी करने वाले हैं।"

तब से जिनेश्वर सूरि और उनकी परम्परा खरतर गच्छीय कही जाने लगी।

इस समय मेटपाट् (मेवाड़) आदि में चैत्यवास का विशेष जोर था। इसलिये उन्होंने उस प्रान्त की ओर विहार किया। जिनेश्वर के बाद इनके शिष्य जिनवल्लभ हुए। ये चैत्यवास के कट्टर विरोधी थे। संवत्

११६७ में जिन वल्लभ का स्वर्गवास हुआ और उनके पट्ट पर जिनदत्त सूरि हुए जो बड़े प्रभावक थे। [तपागच्छ पट्टावली पृ० १२४ गु०]

आंचल गच्छः—विक्रम की तेरहवीं सदी में अधिकतर श्रमण साधु शिथिलाचारी हो गये और अपनी अपनी इच्छा से नयी नयी क्रिया स्वीकार कर अपने २ मत का प्रचार करने लगे। इसी शिथिलाचार के समय में खरतर, आंचल, सार्धपौर्णमीय और आगमिक मतों की उत्पत्ति हुई।

आंचल गच्छ की उत्पत्ति का रूप इस प्रकार है—

जयसिंह सूरि के पास दंताणां के द्रोण श्रेष्ठी के पुत्र "गोदू" ने दीक्षा स्वीकार की और शनैः शनैः आगमाभ्यास में वह प्रवीण होने लगा। एकदा दशवैकालिक सूत्र के अर्थ का विचार करते हुए उपाश्रय में सचित जल के भरे हुए घड़े देखकर वे गुरु से बोले—"भगवन्! हम श्रमण कहते क्या हैं और करते क्या हैं?"

गुरु ने कहा—"समय का प्रभाव है।"

गुरु की अनुमति से उन्होंने शुद्ध मार्ग अंगीकार किया, जिससे गुरु ने उनको उपाध्याय पद प्रदान कर विजयचन्द्र नाम रखा।

फिर तीन शिष्यों के साथ, गुरु की आज्ञा से उन्होंने क्रिया का उद्धार प्रारम्भ किया। सिद्धान्तानुसार उपदेश देने और ४२ दोषरहित आहार मिले तो ही स्वीकार करना ऐसी प्रतिज्ञा की। एक बार शुद्ध आहार नहीं मिलने से ३० दिन बिना आहार के ही बीत गये फिर भी वे शुद्ध मार्ग से विचलित नहीं हुए। फिर पावागढ़ जाकर सागारी अनशन स्वीकार किया।

कहा जाता है कि उस समय चक्रेश्वरी और पद्मावती देवी सीमंधर स्वामी को वंदन करने विदेह क्षेत्र में गई हुई थीं। उन्होंने सीमंधर स्वामी के मुख से विजयचन्द्र के शुद्ध क्रियाधारक रूप की प्रशंसा सुनी तो दर्शन करने आई और वंदना कर बोलीं—महाराज! सीमंधर स्वामी ने जैसा कहा, वैसे ही आप हैं। अतः हे पूज्य वर! आप अपने गच्छ का "विधि पक्ष"

नाम प्रकट कर के विचरो। भालेज नगर में आप को शुद्ध भिक्षा प्राप्त होगी।"

देवी के कथनानुसार विजयचन्द्र पावागढ़ से भालेज नगर गये और वहां शुद्ध आहार प्राप्त कर अनशन तप का पारण किया।

वहाँ से आप बेणप नगर गये और वहां के कोटि नामक व्यवहारी को भक्त बनाया। उपरोक्त देवी घटना कहाँ तक सत्य है, यह विचारणीय है।
कोटि सेठ एक बार पाटण गया और प्रतिक्रमण में वंदना देते समय मुंहपति के स्थान पर वस्त्र के छोर से वंदना की। कुमारपाल भूपाल ने गुरु से इसका कारण पूछा तो गुरु ने विधि पक्ष की बात कही।

इस पर कुमारपाल ने वस्त्रांचल से वंदना करने के कारण विधि पक्ष का नाम "आंचलक" प्रचलित किया। इस प्रकार सं० १२१३ में इस गच्छ को उत्पत्ति हुई और विजयचन्द्र को आचार्य स्थापित किया।[1]

आगमिक (आगमियां) गच्छ:—पूनमिया गच्छ के श्री शीतलगुण सूरि और देवभद्र सूरि ने आंचल गच्छ में प्रवेश किया, फिर उसे भी त्याग कर उन्होंने अपना स्वतन्त्र मत चलाया। उन्होंने क्षेत्र देवता की स्तुति का निषेध किया, इस प्रकार की कई नूतन प्ररूपणाएं कीं और अपने मत का नाम "आगमिक गच्छ" रखा। इस गच्छ की उत्पत्ति सं० १२५० में होना कहा जाता है। इस मत में भी बहुत से शक्तिशाली आचार्य हुए।[2]

॥ लावणी ॥

विक्रम शत द्वादश पिच्चासी मांही,
गच्छ तपा की उत्पत्ति कही भाई।
लूंका, कड़वा, बीजामत हुए नाना,
आगे इनका परिचय देखो छाना।
किया क्रिया उद्धार विमल यशधारी ॥ बेकर० ॥१३५॥

---

१. तपा गच्छ पट्टावली पृ० १४४-४५।
२. तपा गच्छ पट्टावली, पृ० १४६

तपा गच्छ की उत्पत्तिः – जगत् चन्द्र सूरि ने अपने गच्छ की शिथिल क्रिया देख कर गुरु आज्ञा से चैत्र गच्छीय देवचन्द्र उपाध्याय के सहयोग से क्रिया उद्धार किया। उन्होंने इस कार्य के लिये असाधारण त्यागवृत्ति और शास्त्रोक्त शुद्ध क्रिया स्वीकार की।

दिगंबर आचार्यों के साथ वाद में विजय पाने से मेवाड़ के महाराणा जेत्रसिंह ने जगत् चन्द्र सूरि को "हिरला" इस उपाधि से विभूषित किया। उन्होंने आजीवन आयंबिल तप की कठोर साधना करते हुए जब १२ वर्ष पूर्ण किये तब महाराज ने उनको "तपा" इस विरुद से सम्मानित किया। इस प्रकार तब से अर्थात् वि० स० १२८५ से तपागच्छ की उत्पत्ति हुई।

जगत् चन्द्र के शिष्य विजयचन्द्र से वृद्ध पौशालिक तपागच्छ की और देवेन्द्र सूरि से लघु पौशालिक तपागच्छ की उत्पत्ति हुई।

विजयचन्द्र सूरि पीछे से शिथिलाचारी बन गये, जब कि देवेन्द्र सूरि शुद्ध क्रिया का पालन करते हुए पट्टधर बने और चिरकाल तक जिन शासन का अच्छी तरह उद्योत करते रहे।

विजयचन्द्र सूरि के समय में साधु को वस्त्र की पोटलिका रखने, नित्य प्रति विगय सेवन करने और तत्काल किये हुए उष्ण जल के ग्रहण करने की छूट चालू हो गई थी।

इस प्रकार वि० सं० १२८५ में तपागच्छ की उत्पत्ति बतलाई गई है।

फिर सोलहवी सदी में लोंकागच्छ, कड़वा मत, बीजामत आदि अनेक गच्छ हुए। लौंकाशाह और आनन्द विमल सूरि आदि ने क्रिया उद्धार कर निर्मल यश कीर्ति प्राप्त की ॥१३५॥

॥ लावणी ॥

चतुर्दशी का पर्व शास्त्र नहीं कहता,
पूनमियां गण का मत युक्त ठहरता।

सार्ध पूनमियां फल पूजा नहीं माने,
देवभद्र से आगमिया मत जाने।
गण परिवर्तन की मति उसने धारी ।।दे कर०।।१३६।।

अर्थः - शास्त्र के अनुसार पूर्णिमा के दिन ही पाक्षिक प्रतिक्रमण करने का उल्लेख है, चतुर्दशी का नहीं। इसलिये पूनमिया गच्छ का पूर्णिमा को पर्व करने का विचार युक्तिसंगत ठहरता है। सार्ध पूनमिया के अनुसार प्रतिमा की पूजा में फल का उपयोग उचित नहीं माना जाता। देवभद्र सूरि से आगमिया मत की उत्पत्ति हुई। ये आगमानुकूल अनुष्ठान में ही श्रद्धा रखते थे। संयोग पा कर इनके मन में गण परिवर्तन की बात उठी और तदनुकूल गच्छ की स्थापना की गई ।।१३६।।

सार्ध पूनमिया गच्छ की उत्पत्ति—इस गच्छ की उत्पति सं०१२३६ में बताई गई है।

राजा कुमारपाल ने एक बार जब हेमचन्द्र आचार्य से कहा—"पूनमियां गच्छ वाले जैनागम के अनुसार चलते हैं या नहीं, मुझे इसकी जांच करनी है।"

तब आचार्य ने उनको बुलाया, कुमारपाल द्वारा पूछे गये प्रश्नों का ठीक तरह से उत्तर न देने के कारण राजा ने उन साधुओं को अपने देश से दूर चले जाने को कहा। कुमारपाल के बाद पूनमियां गच्छ के आचार्य सुमतिसिंह पाटण आये। उस समय गच्छ का नाम पूछने पर उन्होंने कहा हम सार्धपूनमिया गच्छ के हैं। इस गच्छ वालों की विशेषता यह है कि वे जिनमूर्ति को फल से पूजा नहीं करते। तब से सार्ध पूनमियां मत प्रकट हुआ।

।।लावणी।।

मुनि चन्द्रसूरि ने गण का नाम चलाया,
विगयात्याग जीवन भर पूर्ण निभाया।
सुमतिसिंह से सार्धपूनमिया कहते,
बारह सौ पचास आगमिया चलते।
क्षेत्र देव की पूजा नहीं स्वीकारी ।। लेकर० ।।१३७।।

अर्थः—मुनि चन्द्र सूरि ने जीवन भर पांच विगयों का त्याग किया, वे मात्र छाछ पीकर ही जीवन चलाते रहे। इन्होंने गगा का नाम चलाया। आचार्य सुमतिसिंह से सार्धपूनमिया मत का प्रचलन हुआ। सं० १२५० में आगमिक मत का आरभ हुआ। ये क्षेत्र देव की पूजा नही मानते है। आगमानुकूल विचार होने से इस गच्छ का नाम "आगमिया" कहा जाता है ॥१३७॥

॥लावणी॥

खरतर गच्छ के जिनदत्त जानो भाई,
बारह सौ अरु चार साल बतलाई।
हुए प्रभावक देव सिद्ध कर लीना,
स्वर्ग मिला अजमेर शान्तिरस भीना।
विधि पख ने मुंहपत्ती दीनी डारी॥ लेकर० ॥१३८॥

अर्थः -पट्टावली के अनुसार सं० १२०४ में जिनदत्त सूरि से खरतर गच्छ की उत्पत्ति बतलाई गई है परन्तु प्रभावक चरित्र के अनुसार जिनेश्वर सूरि के द्वारा खरतर गच्छ की उत्पत्ति मानी जाती है। इस गच्छ में जिनदत्त सूरि बड़े प्रभावक और दैवी-सिद्धि वाले आचार्य थे। उनका स्वर्ग वास अजमेर में हुआ माना जाता है। विधि पक्ष ने मुंहपत्ती के बदले वस्त्रांचल से यतना कर के "आंचल गच्छ" नाम प्राप्त किया जो प्रसिद्ध है ॥१३८॥

॥लावणी॥

जगच्चन्द्र ने आजीवन तप कीना,
जैत्रसिंह ने तपा विरुद दे दीना।
सोमप्रेम ने जल कुंकण बंद कीना,
मरु में दुर्लभ जल से भ्रमण न दीना।
शाखा इसकी कहूं जरा विस्तारी॥ देकर० ॥१३९॥

अर्थः—जगत् चन्द्र सूरि ने आजीवन आयंबिल तप किया, जिससे

महाराणा जैत्रसिंह ने इनको "तपा" इस विरुद से अलंकृत किया। आचार्य सोमप्रभ ने अपकाय की विराधना के कारण जल कुंकण में और शुद्ध अचित जल का संयोग दुर्लभ होने से मरुदेश में साधुओं का विचार निषिद्ध कर दिया था।

आगे इसकी शाखा का विस्तार से परिचय दिया जाता है ॥१३९॥

॥ लावणी ॥

शिथिल वृत्ति का जोर बढ़ा शासन में,
विजयचन्द्र भी मिले शिथिल यतिजन में।
त्यक्त-शाल में रहे वर्ष द्वादश लग,
देवभद्र ने धरा नहीं उसमें पग।
पक्ष लगे उनके भी कई नर नारी ॥ देकर० ॥१४०॥

अर्थः—जगत् चन्द्र के बाद शिथिलाचार का जोर बढ़ता गया। विजयचन्द्र सूरि स्वयं उन शिथिल साधुओं के सहायक हो गये अर्थात् उनमें मिल गये।

देवेन्द्र सूरि को इस बात की खबर होने पर वे मालवा से खंभात आये, पर विजय चन्द्र सूरि उनको वंदन करने नहीं गये। तब देवेन्द्र सूरि ने कहलाया— "तुम १२ वर्ष तक एक ही स्थान पर एक ही उपाश्रय में कैसे ठहरे हो।"

उन्होंने उत्तर में कहा—"हम तो निर्ममी और निरहंकारी हैं।"

उनके उपेक्षा पूर्ण वचन से देवेन्द्र सूरि वहाँ नहीं ठहर कर "लघु पोशाल" में ठहरे, इसलिये वे "लघु पोशालिक" कहलाये।

जो लोग उनके अनुयायी हुए वे लघु पोशालिक और जो विजयचन्द्र के भक्त रहे वे वृद्ध-पोशालिक कहलाये। इस प्रकार दो शाखाएँ प्रगट हो गईं ॥१४०॥

॥लावणी॥

विजयचन्द्र ने खुल्ले बोल कराये,
साध्वी लाया अशनादिक बहराये।

त्यक्त-शाल में रह खुल्ली करवाई,
देवभद्र से उनकी हुई जुदाई।
पोशालिक गण की यह बात उचारी ॥ लेकर० ॥१४१॥

अर्थः—आचार्य विजयचन्द्र ने आचार मार्ग में कई बातों की छूट दी। उनके ११ बोलों में वस्त्र की गांठ बाँधकर रखना, नित्य विगय वापरना, वस्त्र धोना, साध्वियों का लाया हुआ आहार लेना आदि मुख्य है।

छोड़ी हुई पोशाल को उन्होंने खुल्ली करवाई तब से देवेन्द्र सूरि और देवभद्र से उनका सम्बन्ध अलग हो गया।

पोशालिक मत की यह वुली वात, तपागच्छ पट्टावली में स्पष्ट देखने में आती है ॥१४१॥

आचार्य धर्मघोष

॥ लावणी ॥

सदी तेरवीं का यह हाल सुनाया,
शिथिल देख आंचल तप मत प्रगटाया।
बढ़ा जोर यतियों का फिर लो लेखो,
धर्मघोष ने शाकिनी वश की देखो।
उज्जैनी में योगी हिम्मत हारी ॥ लेकर० ॥१४२॥

अर्थः—विक्रम की तेरहवी सदी की यह घटना है। शिथिलाचार को वढ़ते देख जयचन्द्र सूरि के शिष्य विजयचन्द्र सूरि ने क्रिया-उद्धार किया और विधि पक्ष एवं आंचल गच्छ नाम स्वीकार किया।

फिर देवेन्द्र सूरि के पश्चात् धर्मघोष सूरि हुए। उनका समय मंत्र-तंत्र का युग था। मन्त्र के प्रभाव से यतियों का जोर वढ़ रहा था। यति लोग विभिन्न स्थानों पर अपनी गादियाँ भी कायम कर चुके थे और वे मंत्र-तन्त्र के वल से समाज में प्रभाव जमाने में विशेष प्रयत्नशील थे।

उज्जयनी में एक योगी का अत्यन्त जोर था। उसकी अनुमति के

बिना कोई साधु वहां नही रह सकता था। धर्मघोष सूरी को यह अच्छा नही लगा। उनको संवेगशील साधुओं का विहार नगर में बाधारहित करना था। अतः वे अपने मुनि परिवार सहित उज्जयनी आ पहुंचे।

योगी को पता चला तो वह बहुत ही क्रुद्ध हुआ और किसी भी तरह साधुओं को परेशान करने का उसने निश्चय किया।

सहसा भिक्षा के लिये जाते हुए श्रमण साधुओं से उसकी भेंट हुई। उसने पूछा—"क्या तुमको यहाँ रहना है ? कितने दिन रहना चाहते हो ?"

श्रमण साधुओं ने अपना उज्जयनी में स्थिरवास करने का विचार प्रकट किया। तो योगी ने अपना मान भंग होते देख कर मंत्र शक्ति द्वारा उपाश्रय में बहुत से चूहों की रचना कर दी।

इधर उधर चहुँ ओर चूहों को दौड़ते देख कर श्रमण साधु भयभीत हुए और इधर उधर होने लगे तो गुरु ने उन्हे आश्वस्त किया और मंत्र बल से एक घड़े को अभिमंत्रित किया। फलस्वरूप योगी अपने स्थान पर ही पीड़ा अनुभव करने लगा और अन्त में उसने असह्य वेदना होने से गुरु चरणों में आकर क्षमा याचना की।

आचार्य धर्मघोष ने दूसरे नगर में भी मंत्र बल से शाकिनियों के उपद्रव का निवारण किया।

इस प्रकार योगी को प्रभावहीन कर आपने उज्जयनी का विहार साधुओं के लिये निरापद कर दिया ॥१४२॥

॥लावणी॥

तेरह सो बत्तीस के लगभग जानो,
सोमसूरि ने भीलड़ी वर्षा ठानो।
भीमपल्ली का भग जान बल दीने,
प्रथम पूर्णिमा चले हानि से भीने।
रहे कई आचार्य सहे दुख भारी॥ लेकर० ॥१४३॥

अर्थ :—संवत् १३३२ के लगभग की बात है कि सोमभद्र सूरि ने

भीमपल्ली ग्राम में वर्षावास किया। उस समय उन्हें ज्ञान बल से मालूम हुआ कि इस ग्राम का निकट भविष्य में ही नाश होने वाला है।

वहां पर अन्य गच्छ के भी ग्यारह आचार्य थे। उस वर्ष कार्त्तिक मास दो थे किन्तु आचार्य ने संघहानि का कारण देख कर प्रथम कार्त्तिक की चतुर्दशी को ही प्रतिक्रमण कर भीमपल्ली से बिहार कर दिया। पर जो उपेक्षा कर वहां रहे उनको भयंकर कष्ट का सामना करना पड़ा ॥१४३॥

॥लावणी॥

धर्मघोष जंगम विष-पीड़ा जानी,
संघ-विनय भारी में बेल पिछानी।
जीर्ण द्वार में आगत जन से लीजे,
दर्दहरण को घिस कर लेप करीजे।
आजीवन तज विगय शुद्धि की भारी ॥ लेकर० ॥१४४॥

अर्थः—आचार्य धर्मघोष को संयोगवश एक बार जंगम विष की पीड़ा हो गई। जैसे जैसे विषधर का जहर चढ़ता गया वैसे वैसे शनैः शनैः आचार्य को मूर्च्छा आने लगी। इससे चिन्तित होकर संघ के प्रमुख लोग उनके उपचार के लिये विचार करने लगे। औषधोपचार से भी जब विष का उपशमन नहीं हुआ तो संघ ने गुरु चरणों में अपनी चिन्ता व्यक्त की।

देह पर निर्ममत्व भाव होने पर भी आचार्य ने संघ के आग्रह से एक उपाय बतलाया और कहा—"नगर के बाहर से एक पुरुष काष्ठ की भारी लेकर आ रहा है, उसमें एक विषापहारिणी बेल है, जिसको घिसकर लगाने से कैसा भी विष हो उतर जाता है।"

संघ ने वैसा ही किया। काष्ठ का भार लेकर आने वाले पुरुष से वह बेल प्राप्त की और आचार्य के शरीर पर उसका लेप किया जिससे शरीर स्वस्थ हुआ।

आचार्य ने उस एक बेल के उपयोग रूप सूक्ष्म दोष के प्रतीकार हेतु

सदा के लिये विगय मात्र का त्याग कर दिया। यह आत्मार्थीपन का बेजोड़ उदाहरण है ॥१४४॥

॥लावणी॥

सोमसुन्दर ने शिथिल देख यतिगण को,
किये नियम शासन उत्थान करण को।
चौदह सो सत्तावन समय पिछानो,
यत्न करत भी बढ़ी चरण की हानो।
सदी सोलवीं की घटना कहुं सारी॥ लेकर० ॥१४५॥

अर्थः—आचार्य सोमसुन्दर सूरि के समय में दिगम्बर सम्प्रदाय का प्रचार बढ़ा हुआ था। ईडर में तो दिगंबर भट्टारकों की गद्दी भी कायम हो चुकी थी। जब सोमसुन्दर को आचार्य पद प्रदान किया तो उन्होंने यतिगत के आचार की शिथिलता देख कर अपने साधु समुदाय को शिथिलाचार से बचाने के लिये कुछ नियम मर्यादा-पट्ट के रूप से स्थिर किये।

संवत् १४५७ के लगभग उन्होने संघरक्षा का यह प्रयत्न किया, फिर भी चरित्र-धर्म की समय समय पर हानि होती रही।

अब सोलहवीं सदी की कुछ घटनाएं प्रस्तुत की जा रही हैं:—॥१४५॥

॥लावणी॥

अष्टोत्तर पनरह में लोंका आया,
दयाधर्म ही सच्चा मत बतलाया।
पूजा पोषा दानादिक नहीं माने,
गच्छवासि मिल विविध दोष दे छाने।
देव हमारे वीतराग अविकारी ॥ लेकर० ॥१४६॥

अर्थः—संवत् १५०८ में लोंकाशाह प्रकट हुआ। उसने दया धर्म को ही सच्चा धर्म बतलाया।

गच्छवासी लोग उनके विविध दोष बतलाते और उनका विरोध करते। समाज में यह भ्रान्ति फैलाई जाने लगी कि लोंकाशाह पूजा, पौषध और दान आदि नहीं मानता। विरोध भाव से इस प्रकार के कई दोष विरोधियों द्वारा लगाये गये किन्तु वास्तव में लोंकाशाह धर्म का या व्रत का नहीं अपितु धर्म विरोधी ढोंग-आडम्बर का निषेध करता था।

उसका मत था कि हमारे देव वीतराग एवं अविकारी हैं, अतः उनकी पूजा भी उनके स्वरूपानुकूल ही आडम्बर रहित होनी चाहिये ॥१४६॥

॥लावणी॥

कहे विरोधी व्रत पोषा नहीं माने,
पर यह कहना है जनगण बहकाने।
क्रियावाद में आडम्बर जो छाया,
लोंका ने उसको ही दूर हटाया।
कबीर ने भी की यही ललकारी॥ लेकर ॥१४७॥

अर्थः—विरोधी लोगों का यह कथन कि लोंकाशाह व्रत, पौषध आदि को नहीं मानता, मात्र धर्म प्रेमी जनसमुदाय को बहकाने के लिये था। वास्तव में लोंकाशाह ने व्रत या तप का नहीं किन्तु धर्म में आये हुए बाह्य क्रियावाद यानि आडम्बर आदि विकारों का ही विरोध किया था। जैसा कि कबीर ने भी अपने समय में बढ़ते हुए मूर्तिपूजा के विकारों के लिये जन समुदाय को ललकारा था। यही बात लोंकाशाह ने भी कही थी। वीतराग के स्वरूपानुकूल निर्दोष भक्ति से उनका कोई विरोध नहीं था ॥१४७॥

उनका मन्तव्य इस प्रकार है :

॥लावणी॥

दया, दान, पूजा, पौषध की करणी,
आडम्बर उजमणा की नहीं वरणी।

विकार का परिशोध किया था उसने,
सत्करणी निर्दोष बताई उसने ।
सद् गुण पूजा ही भव तारणहारी ।। लेकर० ।।१४८।।

अर्थः—लोंकाशाह ने दया, दान, पूजा और पौषध की करणी में आडम्बर एवं उजमणा आदि की प्रणाली को ठीक नहीं माना । उन्होंने कर्मकाण्ड में आये हुए विकारों का शोधन किया और सर्वसाधारण जन भी सरलता से कर सके, वैसी निर्दोष प्रणाली स्वीकार की । उन्होंने पूजनीय के सद्गुणों की ही पूजा को भवतारिणी मानी । आरम्भ को धर्म का अंग नहीं माना क्योंकि पूर्वाचार्यों ने "आरम्भे नत्थि दया" इस वचन से हिंसा रूप आरम्भ में दया नहीं होती यह प्रमाणित किया ।।१४८।।

।।लावणी।।

शास्त्र वाचते जगा बोध मन माहीं,
नाम, रूप या द्रव्य की पूजा नाहीं ।
सद्गुण ही पूजा का कारण मानो,
परंपरा में बढ़ा रोष मत छानो ।
महिमा इसकी हुई जगत् में जहारी ।। लेकर० ।।१४९।।

अर्थः—शास्त्र का वाचन करते हुए लोंकाशाह को बोध हुआ । उन्होंने समझा कि वस्तु के नाम, रूप या द्रव्य पूजनीय नहीं है । पूजनीय तो वास्तव में वस्तु के सद्गुण हैं । लोंकाशाह की इस परम्परा विरोधी नीति से लोकों में रोष बढ़ना सहज था । गच्छवासियों ने शक्ति भर इनका विरोध किया पर ज्यों ज्यों विरोध बढ़ता गया त्यों त्यों उनकी ख्याति व महिमा भी बढ़ती गई । जो अल्पकाल में ही देश-व्यापी हो गई । गुजरात, पंजाब, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में चारों ओर लोंकागच्छ का प्रचार व प्रसार हो गया ।।१४९।।

लोंकाशाह के मंतव्य की उपादेयता इसी से प्रमाणित है कि अल्पतम समय में ही उनके विचारों का सर्वत्र आदर हुआ ।

॥लावणी॥

प्रथम संयमी हुए भाण ऋषि नामी,
अनुशासन अरु दृढ़ संयम के कामी।
परिग्रहधारी से श्रावक थे रूठे,
सत्य मार्ग सुन भविजन सम्मुख ऊठे।
लोंकागच्छ की विमल कीर्ति विस्तारी ॥लेकर०॥१५०॥

अर्थः—लोंकाशाह के विचारों से प्रभावित हो कर प्रथम भानाजी दीक्षित हुए। वे धर्मानुशासन और दृढ़ संयम के बड़े प्रेमी थे। लोंकाशाह दीक्षा के लिए ऐतिहासज्ञों में मतभेद है। कुछ उनका दीक्षित होना मानते हैं तो कुछ दीक्षित नहीं मानते पर गहरी गवेषणा से प्राप्त सामग्री में लोंकाशाह की दीक्षा का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

संभव है १५०८ में उनके विचारों में जो क्रान्ति आई, उसने सं० १५२४ या १५२८ में मूर्त्त रूप धारण किया हो। भाणजी आदि ने सं० १५३१ में मुनिव्रत धारण किया। परिग्रहधारी यतियों से श्रावक-समाज पूर्ण रूप से असंतुष्ट था अतः लोंकाशाह का सत्य मार्ग सुनकर सब उस ओर झुकने लगे और लोंका गच्छ की निर्मल कीर्ति देश विदेश में फैलने लगी ॥१५०॥

॥ लावणी ॥

रूप, जीवादि आठ पाट शुद्ध चाले,
महिमा पूजा में हुए फिर मतवाले।
निमित्त का उपयोग करण ऋषि लागे,
राज-मान आडम्बर में मन जागे।
आत्मार्थी संतों ने क्रिया उधारी॥ लेकर० ॥१५१॥

अर्थः—लोंकाशाह का लक्ष्य शुद्ध श्रमण परम्परा में आये हुए विकारों को दूर करने का था नूतनमत निर्माण की ओर उनका लक्ष्य नहीं था। यही कारण है कि गच्छ की सुव्यवस्था, मर्यादा एवं उसके परिचालन

के लिये उनकी कोई खास योजना व रूपरेखा उपलब्ध नहीं होती केवल श्रद्धा प्ररूपणा के बोल ही उपलब्ध होते हैं। ऋषि भाणाजी से लेकर ऋषि रूपजी और ऋषि जीवाजी तक आठ पाठ तक शुद्ध संयम का आराधन चलता रहा, फिर धीरे २ लोंका गच्छ में भी शिथिलाचार का प्रवेश होने लगा। महिमा पूजा की ओर उनका झुकाव बढ़ा और ऋषि लोग ज्योतिष, निमित्त आदि का उपयोग करने लगे। श्री पूज्य शिवजी के समय में राजकीय सम्मान मिलने पर उनमें भी नगर प्रवेश पर उत्सव-स्वागत आदि का आडम्बर चल पड़ा। परिणामस्वरूप आत्मार्थी संतों ने शासनहित की चिन्ता मे फिर क्रिया उद्धार का मार्ग स्वीकार किया ॥१५१॥

॥लावणी॥

जीव, धर्म, लवजी ने जोर लगाया,
धर्मदास, हरजी भी आगे आया।
सदी सतरवीं में यह जोत जलाई,
सोलह में फिर धर्म ने उसे बढ़ाई।
शिष्य निन्नाणु नाण चरण के धारी,
परम्परा अब सुन लो न्यारी न्यारी॥ लेकर० ॥१५२॥

अर्थ:—लोंकागच्छ में से निकल कर श्री जीव ऋषि, श्री धर्मसिंह जी, श्री लवजी ऋषि और श्री हरजी ऋषि ने शुद्ध शास्त्र सम्मत क्रिया के पालन में जोर लगाया। उन्होंने १७ वीं सदी के अन्त में शुद्ध व शास्त्र सम्मत सयंम की ज्योति जगाई और सं० १७१६ में फिर श्री धर्मदासजी महाराज ने इस निर्मल ज्योति को और आगे बढ़ाया। उनके तप, सयममय जीवन से प्रभावित होकर उनके निन्नाणू (६६) शिष्य हुए जो अच्छे विद्वान्, आचारनिष्ठ और प्रभावशाली थे। इनकी पृथक् पृथक् परम्परा इस प्रकार है ॥१५२॥

॥लावणी॥

जीवराज मुनि की गुणगाथा गाऊं,
हुआ शिष्य विस्तार पूर्ण बतलाऊं।

लालचन्द मुनि के परिवार सुहाये,
नानक सामीदास, अमर प्रगटाये।
हुए संत गुणवन्त ज्ञान तपधारी ॥ लेकर० ॥१५३॥

अर्थ:—क्रिया उद्धारक पूज्य जीवराजजी महाराज की गुणगाथा गाकर उपलब्ध सामग्री के अनुसार उनकी शिष्य परम्परा के विस्तार को प्रस्तुत करता हूँ। श्री जीवराजजी के शिष्य पूज्य लालचन्दजी के परिवार में पूज्य दीपचन्दजी से एक नानकरामजी और दूसरी सामीदासजी की परम्परा चली। फिर पूज्य लाल चन्दजी के शिष्य अमरसिंहजी की दूसरी परम्परा प्रकट हुई।

हर एक परम्परा में अच्छे त्यागी, तपस्वी और प्रतिभा-सम्पन्न संत हुए ॥१५३॥

॥लावणी॥

धन्ना ऋषि से शीतल कुल प्रगटाया,
नाथूराम गण पंचनदीय सुनाया।
कुलोपकुल के हुए संत कई नामी,
किया बड़ा उपकार नमूं सिर नामी।
पट्टावली में शाखा कई विस्तारी ॥ लेकर० ॥१५४॥

अर्थ:—पूज्य जीवराजजी के द्वितीय शिष्य धनजी महाराज से पूज्य शीतलदासजी की परम्परा चालू हुई। श्री धन्ना ऋषि के द्वितीय शिष्य श्रीमनजी से पूज्य नाथूरामजी की परम्परा चली, इस परम्परा का हरियाणा एवं पंजाब में अधिक प्रचार रहा। इसके अतिरिक्त कई कुल और उपकुल की परम्पराएं चली और कई प्रभावशाली संत हुए जिनके महान् उपकार का स्मरण कर हम नतमस्तक हुए बिना नहीं रह सकते। शाखाओं का विशेष विस्तार पट्टावली से समझना चाहिये ॥१५४॥

॥लावणी॥

धर्मसिंह मुनि लोंका गच्छ से आये,
दरियापीर को अपने वश में लाये।

शिवजी के गए चरित्र उजारा,
दरियापुरी के नाम वंश विस्तारा।
आठ कोटि से सामायिक लो धारो ।। लेकर० ।।१५५।।

अर्थः—पूज्य जीवराजजी के बाद क्रियोद्धारक पूज्य धर्मसिंहजी हुए। आपने लोंकागच्छीय श्री पूज्य शिवजी की अनुमति से दरिया पीर की दरगाह में रात्रिवास कर वहां के पीर के उपसर्गों को सहन करके अन्त में उसे अपना वशवर्ती बना लिया। इससे उनके उत्कृष्ट सन्त बल की बड़ी ख्याति हुई। एवं नगर के मुख्य द्वार दरिया पोल पर अधिकतर धर्म उपदेश करते रहने से आपकी परम्परा दरियापुरी संप्रदाय के नाम से कही जाने लगी। पूज्य शिवजी के गच्छ से निकल कर आपने क्रिया उद्धार किया। आपका मंतव्य था कि श्रावक को सामायिक में आठ कोटि से ही पचखांग करना चाहिये। अतः आपकी परम्परा आठ कोटि के नाम से भी पुकारी जाने लगी ।।१५५।।

।।लावणी।।

ऋषि लवजी का फैला नाम सवाया,
कंबापुरी में क्रिया उद्धार कराया।
बोरा वीरजी को प्रतिबोध दिलाया,
कष्ट सहन कर भी नहिं कदम हटाया।
गुर्जर में खंभात गच्छ यश धारी ।। लेकर० ।।१५६।।

अर्थः—धर्मसिंहजी के समकालीन एक क्रिया उद्धारक लवजी भी हुए। क्रिया उद्धारकों में इनका नाम खूब फैला।

कहा जाता है कि सूरत के वोहरा वीरजी का पत्र पाकर खंभात के नवाब ने इनको तीन दिन तक अपने यहाँ बिठाये रखा। फिर भी ये अपने विचार से विचलित नहीं हुए। फलस्वरूप बेगम का मन पिघला और उसके कहने से आप मुक्त कर दिये गये।

लवजी ने अपने दो साथी मुनियों के साथ कंबापुरी (खंभात) में

क्रिया उद्धार किया। कष्ट सहकर भी आप पीछे नहीं हटे। इससे प्रभावित होकर वोहरा वीरजी आपके भक्त हो गये। सं० १७१० का चातुर्मास आपने सूरत में ही किया। आपकी परम्परा गुजरात में खंभात गच्छ के नाम से प्रसिद्ध है ॥१५६॥

॥लावणी॥

सोम कान्ह ऋषि मूल पुरुष हुए नामी,
तारा ऋषि का वंश गुर्जरगामी।
अमरसिंह पंजाब गच्छ के मुखिया,
रामरतनजी भी थे गुण के दरिया।
भिन्न कुलों में मूल न जाय विसारी ॥ लेकर० ॥१५७॥

अर्थ:—पूज्य लवजी के प्रमुख शिष्य ऋषि सोमजी और ऋषि कानजी हुए। तारा ऋषि का परिवार गुजरात में रहा और कान्हा ऋषि का परिवार मालवा में विचरता रहा।

पूज्य सोमजी के शिष्य हरिदासजी से पंजाब परम्परा चली। जो पूज्य अमरसिंहजी और पूज्य रामरतनजी के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस प्रकार एक ही मूल में विभिन्न कुल निकल पड़े ॥१५७॥

॥ लावणी॥

लवजी के उद्धार ने क्रांति मचाई,
गच्छवासी ने अपनी आण फिराई।
स्थानाशन का निषेध घोषित कीना,
भग्न गेह में मुनि ने डेरा दीना।
ढूंढक ऐसा कहन लगे नर नारी ॥ लेकर० ॥१५८॥

अर्थ:—लवजी के क्रिया उद्धार से गच्छवासियों में बड़ी खलबली मची। उन्होंने इनके विरुद्ध प्रचार कर आहार देना, उपाश्रय देना बन्द कर दिया। स्थान नहीं मिलने से लवजी अपने संतों सहित सूने मकान में

ठहरे, जिससे लोग उन्हें ढूंढिया कहने लगे। मुनि ने द्वेषभाव से कहे गये कथन को भी मुक्त भाव से लिया और बोले, "भाई! ठीक है, हमने ढूंढते २ सत्य पाया इसलिये ढूंढिया कहते हो, सो सही ही है।"

इस प्रकार "ढूंढक" और दूसरे साधु-मार्गी के नाम से सम्प्रदाय प्रसिद्ध हुआ ॥१५८॥

॥ लावणी ॥

हरजी से कोटा समुदाय कहाया,
दौलतरामजी मुख्य हुए मुनिराया।
हुक्मीचन्दजी पौत्र शिष्य कहलाये,
पूज्य जवाहर, मन्ना नाम धराये।
हुए प्रभावक संत प्रदेश विहारी ॥ लेकर० ॥१५६॥

अर्थ—धर्मसिंह जी की तरह इनके समकालीन अमीपालजी, श्रीपालजी और हरजी ने भी गच्छ त्याग कर क्रिया उद्धार किया। पूज्य हरजी से कोटा परम्परा चालू हुई।

दौलतरामजी के शिष्य श्री लालचन्द जी से पूज्य हुक्मीचन्दजी की परम्परा चली। आगे चलकर पूज्य जवाहरलालजी महाराज और पूज्य मन्नालाल जी महाराज से इसके भी दो कुल चल पड़े। दोनों परम्पराओं में कई प्रभावशाली और उपदेशक संत हुए जिन्होंने प्रान्त प्रान्त में घूम कर धर्म प्रचार किया ॥१५६॥

॥लावणी॥

सोलह में हुए धर्मदास अवतारी,
पोतिया बंध को छोड़ लिया व्रत धारी।
धर्मदास के धन्नाजी बड़भागी,
मरुभूमि में हुए शिष्य सोभागी।
मूलचन्द मुनि ने गुर्जर भू तारी ॥ लेकर० ॥१६०॥

अर्थ—सं० १७१६ में धर्मदासजी महाराज ने पोतियाबंध परम्परा

को छोड़कर अहमदाबाद में मुनि दीक्षा ग्रहण की। आप बडे अवतारी पुरुष थे। आपके निन्यानवे शिष्यों में प्रमुख शिष्य धन्नाजी बड़े भाग्यशाली हुए। उनकी शिष्य परंपरा मरुभूमि में फलीफूली। इनके दूसरे शिष्य मुनि मूलचन्दजी ने गुजरात में धर्म का उपदेश देकर भवी जनों का उद्धार किया। पूज्य मूलचन्दजी से निकलने वाले अन्य कुलोपकुल रूप संघाड़ो का परिचय इस प्रकार है ॥१६०॥

॥लावणी॥

कच्छ, सायला, गोंडल गावी राजे,
बरवाला, लींबड़ी के गरण अति छाजे।
नानी, मोटी पक्ष में कुल फैलाया,
मूल भेद नहीं इनमें कोई पाया।
हुवे संत कई विद्या बल के धारी ॥ लेकर० ॥१६१॥

अर्थः—कच्छ, सायला और गोंडल आदि गद्दी के क्षेत्रों के कारण गद्दी पर विराजने वाले आचार्यों की परम्परा भी गाव के नाम से कच्छ संघाड़ा, सायला संघाड़ा और गोंडल संघाड़ा आदि नाम से कही जाने लगी।

बरवाला और लींबड़ी संघाडा भी शोभायमान है। लींबड़ी के पूज्य श्री अजरामरजी स्वामी विशेष प्रभावशाली रहे। लींबडी आदि कुछ संघाड़ों में नानी पक्ष मोटी पक्ष के उपकुल भी है पर इनमे कोई मौलिक भेद नही पाया जाता। व्यवस्था भेद एवं गुरु भक्ति के रूप में ही इन संघाड़ों का प्रादुर्भाव हुआ प्रतीत होता है। इनमें कई विद्याबल सम्पन्न मुनिराज हुए शतावधानी श्री रतनचंद जी, श्री मणिलालजी, श्री मोहनलालजी आदि इसी परंपरा के प्रख्यात संत हुए है। जिनकी महिमा आज भी विद्यमान है ॥१६१॥

॥लावणी॥

रामचन्द्र मुनि मालव भू को तारे,
मरुधर में भी कुछ मुनिगण विस्तारे।

मेद पाट में पृथ्वीचन्द मुनि गाजे,
पूज्य मनोहर यू० पी० में शुभ राजे।
धर्मदास के गण की महिमा भारी ।।लेकर०।।१६२।।

अर्थः—पूज्य धर्मदासजी के तृतीय शिष्य श्री रामचन्द्रजी ने मालव क्षेत्र को पावन किया। पीछे इन के अनुगामी सतों में से कुछ का दीर्घ काल तक मरुधर प्रदेश में विचरण रहा जो आज ज्ञानचन्दजी महाराज की परम्परा के नाम से प्रसिद्ध है।

चतुर्थ शिष्य श्री पृथ्वीचन्दजी मेवाड़ में सुशोभित हुए। उनकी परम्परा का अधिकांश विस्तार मेवाड़ में ही रहा।

पांचवें शिष्य पूज्य श्री मनोहरलालजी महाराज से एक मत परम्परा चली जो उत्तर प्रदेश के निकट क्षेत्रों मे विचरण करती रही। इस प्रकार धर्मदासजी महाराज के शिष्य गण चहुं ओर फैले जिनका आज भी बड़ी महिमा गाई जा रही है ।।१६२।।

पूज्य धन्नाजी महाराज की परम्परा से जो कुल उपकुल निकले उनका परिचय निम्न प्रकार है—

।। लावणी ।।

धन्नाजी का भूधर शिष्य सुभागी,
महातपस्वी शान्त पूर्ण वैरागी ।
रघुपत, जयमल, कुशल पूज्य हुए नामी,
परम्परा तीनों की है अभिरामी ।
भूधर वंश को महिमा अति विस्तारी ।।लेकर०।।१६३।।

अर्थः—पूज्य धन्नाजी के प्रमुख शिष्य भूधरजी बड़े प्रतिभाशाली हुए। आप बड़े तपस्वी, शान्त और पूर्ण वैराग्यवान् थे। भूधरजी के अनेक शिष्यों में श्री रघुनाथजी, श्री जयमलजी और श्री कुशलजी मुख्य हुए। इन तीनों की शिष्य परम्परा आज भी उत्तम रीति से चल रही है। भूधर वंश की इन्होंने बहुत महिमा फैलाई ।।१६३।।

॥ लावणी ॥

पूज्य रघु का शिष्य भीष्म हठ मतवाला,
अष्टादश पनरे में संशय डाला ।
रघुपत ने दो वर्ष तलक समझाया,
सतरे में फिर गण से अलग कराया ।
दया दान में उनकी मत थी न्यारी ॥लेकर०॥१६४॥

अर्थः—पूज्य रघुनाथजी का एक शिष्य भीखमजी बड़ा हठी था। वह एक बार जो बात पकड़ लेता उसे हर तरह से उपयुक्त ठहराने का प्रयत्न करता। सं० १८१५ में उन्हें जैन सिद्धान्त के कुछ वचनों में शंका हुई।

पूज्य रघुनाथजी ने उन्हें दो वर्ष तक सही सिद्धान्त समझाने का एवं उनकी शंकाओं का समाधान करने का प्रयत्न किया परन्तु उन्होंने अपनी हठ नहीं छोड़ी।

फलस्वरूप पूज्य रघुनाथजी ने सं० १८१७ में बगड़ी गांव में उनको अपने गच्छ से अलग कर दिया। पूज्य रघुनाथजी जीव बचाने और अनुकम्पा, दान में पुण्य मानते थे, किन्तु भीखमजी के विचार उससे भिन्न थे। इन्हीं भीखमजी द्वारा श्वेताम्बर तेरा पंथ सम्प्रदाय प्रचलित हुआ ॥१६४॥

॥ लावणी ॥

बीस और दो शिष्य बड़े धी वाले,
कहन लगे जन बावीस टोला वाले ।
दया और गुण पूजा सब कोई माने,
देश और गुरुभेद से अलग पिछाने ।
अन्तर में वत्सलता सब में भारी ॥लेकर०॥१६५॥

अर्थः—पूज्य धर्मदासजी महाराज के बावीस प्रमुख शिष्य हुए जो बड़े बुद्धिमान् और प्रतिभाशाली थे। उनके २२ गणों को विरोधी लोग तिरस्कार भाव से बावीस टोला नाम से कहने लगे। पर संतों ने ज्ञान भाव से सोचा कि साधुओं का मार्ग अनुकूल-प्रतिकूल बावीस परीषहों को जीतने

का है ग्रनः हमें ग्रपना परिचय साधुमार्गो सम्प्रदाय या बावीस संप्रदाय के नाम से ही देना चाहिये।

सभी संघाड़े दया में धर्म ग्रौर गुण पूजा को मान्य करते थे देव गुरु ग्रौर धर्म विषयक सबकी श्रद्धा भी समान थी। केवल प्रान्तभेद ग्रौर गुरु भक्ति से ग्रलग ग्रलग मुखियाग्रों के नाम से बावीस संघाड़े कहे जाने लगे। ग्रंतर में सबका एक दूसरे के साथ पूर्ण वात्सल्य भाव था ॥१६५॥

॥लावणी॥

बावीस परिषह जीतन हित मुनियोधा,
करे कर्म से युद्ध टाल कर क्रोधा ।
संप्रदाय बावीस कहाई जब से,
मुख्य पांच ये शाखाएं हुई तब से
चरणबिहारी बड़े धर्म उपकारी ॥लेकर० ॥१६६॥

ग्रर्थ—बावीस परिषहों को जीतने के लिये मुनीश्वर रूपी योद्धा क्रोध पर विजय प्राप्त कर के कर्मों के साथ युद्ध करते है। जब से इन संतों की मण्डली को बावीस सम्प्रदाय कहा जाने लगा, तभी से इनकी मुख्य पांच शाखाएं चल रही थी। सभी संत चरण विहारी ग्रौर जिन धर्म के सच्चे प्रचारक थे ॥१६६॥

॥ लावणी ॥

ग्रष्टादश शत दशम वर्ष शुभ ग्राया,
पंचेश्वर में मुनि जन प्रेम मिलाया।
प्रमुख संत मिल मर्यादा बधवायी,
मास मधु को शुक्ल पंचमी ग्राई।
जिन शासन के हर्षित थे नर नारी ॥ लेकर० ॥१६७॥
एक वर्ष के बाद मेड़ता नगरी,
पूज्य ग्रमर, भूधर, कान्हा मुनिवर री।
श्रमण सिंह सबने सबंध बढ़ाये,
दीप्त हुए गण सब ही पुण्य सवाये।

अशुभ योग कब टूटी संधि हमारी ।।लेकर०।।१६८।।

अर्थः—सं० १८१० के शुभ वर्ष में पचेवर ग्राम मे प्रमुख संतों का प्रेम मिलन हुआ। चार संप्रदाय के मुख्य मुनियों ने मिल कर वैषाख शुक्ला पंचमी को जैन मुनि के जीवन की कुछ सर्व मान्य सामान्य आचार संहिता तैयार की एवं तदनुरूप कुछ मर्यादाएं बांध कर एक संगठन की भूमिका का निर्माण किया। इससे जिन शासन के सभी लोग परम प्रसन्न थे ।।१६७।।

एक वर्ष के वाद सं० १८११ की वैषाख कृष्णा दशमी को फिर मेड़ता में पूज्य लालचन्दजी महाराज की परम्परा के पूज्य अमरसिंहजी व दीपचन्दजी और पूज्य भूधरजी महाराज के साधु साध्वियों का राजस्थान मुनि मण्डल की ओर से एक संगठन कायम हुआ। इस प्रकार भारत वर्ष की प्रमुख संप्रदायों का एक विधि पूर्वक पुनः संगठन हुआ, जिसमें श्रमणी वर्ग भी साथ था। सभी गण इस संगठन से बड़े प्रसन्न थे। लेकिन यह प्रकृति का नियम है कि शुभ-योग एवं शुभ कार्य दीर्घकाल तक स्थिर नहीं रहते। तदनुसार न मालूम कब कहां और कैसे हमारा यह संगठन पुनः टूट गया कहा नहीं जा सकता। इतिहास की कड़ियां इस बारे में मौन हैं ।।१६८।।

।।लावणी।।

सदी बीसवीं से शुभ अवसर आया,
पर्व ऐक्य हित शुभ संदेशा लाया।
श्रावकगण की चिन्ता गणी ने जानी,
मुनि मंडल का निर्णय लूंगा मानी।
सोहन गणि की सबने वार्ता धारी ।। लेकर० ।।१६९।।

अर्थः—वर्षोंबाद बीसवीं सदी में फिर ऐसा शुभ अवसर प्राप्त हुआ। पंजाब के जैन समाज में पक्खी, संवत्सरी जैसे पर्वों को एवं पत्री व परम्परा को लेकर मतभेद चल रहा था। जिसे मिटाने के सम्बन्ध में चर्चा हुई, लोग बड़े चिन्तित थे। उस समय पंजाब सम्प्रदाय के आचार्य पूज्य सोहनलाल जी महाराज ने श्रावकों से कहा कि आप सब चिन्तित क्यों हैं? स्थानक वासी समाज के मुनियों की एक वृहत्सभा का आयोजन किया जाय, साधु

सम्मेलन हो, उसमें जो निर्णय किया जायगा वह हमें मंजूर होगा। अनुभवी और उत्साही श्रावकों ने भी पूज्य श्री का संकेत पाकर हर्षित हो ऐसा सम्मेलन करने का निश्चय किया ॥१६९॥

॥ लावणी ॥

शासनसेवा-रसिक श्रावक कई आये,
रतन, टेक, दुर्लभ सब के मन भाये।
मिलकर सबने पूरा जोर लगाया,
सौराष्ट्र धरा का भी सहयोग सवाया।
शासन हित सबकी थी शुभ तैयारी ॥ लेकर० ॥१७०॥

अर्थः—शासन सेवा की भावना से कई श्रावक आगे आये और महासभा के माध्यम से इस सम्मेलन के लिये भारतीय स्तर पर काम चालू कर दिया। इसमें अमृतसर के लाला रतनचन्द, लाला टेकचन्द, जम्बू के दीवान बिसनदास आदि, मोरबी के दुर्लभजी झवेरी, अमृतलाल रायचन्द, दक्षिण के मूथा मोतीलाल, कुन्दनमलजी फिरोदिया वकील, झवेरचन्द जादव और सौराष्ट्र के अन्य सदस्य भी पूरे सहायक थे ॥१७०॥

॥लावणी॥

प्रेमी श्रावक घूम घूम समझावे,
सब मुनियों की स्वीकृति प्राप्त करावे।
सम्मेलन हित आमंत्रण कई आवे,
अजयमेरु का सब ही भाग्य सरावे।
तीर्थ धाम सी बनी पुरी सब सारी ॥ लेकर ॥१७१॥

अर्थः—प्रेमी श्रावकों ने घूम घूम कर मुनिराजों को अपने विचार समझाये, सबने मुनि सम्मेलन की आवश्यकता को स्वीकार किया। पर यह सम्मेलन किस स्थान पर हो इसके लिये स्थान २ से निमन्त्रण आने लगे। ब्यावर, अजमेर, दिल्ली आदि के निमंत्रणों में से अजमेर का निमन्त्रण स्वीकार किया गया। कच्छ, काठियावाड़, गुजरात और पंजाब तथा

महाराष्ट्र आदि सुदूर क्षेत्रों के भी सकड़ों मुनि इस सम्मेलन में पधारे। सदियों से बिछुड़ी जैन शासन की ये धाराएं एक स्थान पर आपस में गले मिलों। जैन श्रमण-संघ का यह सम्मेलन महान् तथा अभूतपूर्व था ।।१७१।।

।। लावणी ।।

पर्व संवत्सरी एक करण मन धारा,
अजीव मत का पूर्ण किया निबटारा।
मालव गण के भेद का बड़ा झमेला,
देश देश में फैला असर विषैला।
जन गण में अनशन को थी तैयारी ।। लेकर० ।।१७२।।

अर्थ:—सम्मेलन में तिथिपर्व की एकता के लिये लम्बी चर्चा के बाद यह निश्चय हुआ कि सम्पूर्ण स्थानकवासी समाज में पक्खी-संवत्सरी एक दिन मनाई जावे। इसके लिये प्रमुख मुनियों एवं विद्वान् श्रावकों की एक संयुक्त "तिथि निर्णय समिति" का गठन किया गया।

मुनि कुंदनमलजी आदि संतों में अनाज को अजीव मानने की परम्परा थी। उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज के नेतृत्व में इसकी विस्तृत चर्चा होकर सदा के लिये इस मतभेद को भी दूर कर दिया गया। सचित-अचित की समस्या पर भी विचार किया गया। संगठन के लिये पूज्य जवाहरलालजी महाराज के वीर संघ की योजना पर भी लंबी चर्चा हुई। पर हुक्मी चन्दजी महाराज की संप्रदाय के दोनों पक्षों का आपसी मतभेद इतना गहरा था कि उसने एकता के सारे प्रयत्नों को विफल कर दिया था। मुनि मिश्रीमलजी ने दोनों पक्षों को मिलाने के लिये अनशन भी कर रखा था। सम्मेलन में भी इस प्रश्न ने मुख्य स्थान ले लिया। ।१७२।।

।। लावणी ।।

वर्धमान-दुर्लभ ने काम संवारा,
पूज्य जवाहर ने भी मन को मारा।

पंचमुनि के निर्णय को स्वीकारा,
उभय पक्ष ने मिलकर किया आहारा।
तीर्थधाम सी नगरी हो गई सारी ॥ लेकर० ॥१७३॥

अर्थः – धर्मवीर दुर्लभजी इस सम्मेलन के प्राण कहे जा सकते थे। उन्होंने तन मन से इस मतभेद को सुलझाने का प्रयत्न किया। एक दिन तो उन्होंने मुनिराजों से यह अर्ज कर दी कि जब तक आप इस प्रश्न का समुचित हल नहीं निकाल लें तब तक गोचरी-पानी को उठना नहीं होगा। सेठ वर्द्धमान जी पीतलिया और दुर्लभजी ने बिगड़ी बात को संभाला। पूज्य जवाहरलालजी महाराज भी अवसर के ज्ञाता थे, उन्होंने अपना मन मार कर प्रमुख चार मुनिराजों पर निर्णय छोड़ दिया। दोनों पक्षों ने मिल कर पंच मुनियों के फैसले को स्वीकार किया। श्री शतावधानी रत्नचन्द्रजी म०ने बन्द लिफाफे में फैसला सुना दिया और दोनों ओर के मुनियों का एक साथ आहार-पानी हो गया। उस समय अजयपाल की राजधानी अजमेर तीर्थधाम बनी हुई थी।

॥ लावणी ॥

उदय गणी, आत्माराम,युवाचार्य भारी,
वाचस्पति खुशहाल विमल मतधारी।
बीजमती कुन्दन-पृथ्वी सुखकारी,
अमर मुनि भी उनके थे सहकारी।
ऋषि अमोल थे दक्षिण देश विहारी ॥लेकर०॥१७४॥

अर्थः—सम्मेलन में आये हुए मुख्य मुनियों का परिचय इस प्रकार है:—पंजाब संप्रदाय के वयोवृद्ध गणी उदयचन्दजी, उपाध्याय श्री आत्माराम जी, युवाचार्य काशीरामजी, वाचस्पति श्री मदनलालजी महाराज आदि। बीजमति कुंदनमल जी, फूलचंदजी। महेन्द्रगढ़ से पृथ्वीचन्दजी महाराज, अमर मुनि जी और दक्षिण विहारी पूज्य अमोलख ऋषि जी, आनन्द ऋषि जी, मोहन ऋषि जी आदि भी पधारे थे॥१७४॥

।। लावणी ।।

पूज्य जवाहर, मन्नालाल गणधारी,
ताराचन्द मुनि, धनसुखजी प्रियकारी।
खीचन के मुनि आगम रस के रसिया,
पन्ना, तारा, तूर्य छगन मरुमुखिया।
सुज्ञ मुनि से संघ हस्ति सुखकारी ।। लेकर० ।।१७५।।

अर्थ—मालव संप्रदाय के पूज्य जवाहरलालजी महाराज, पूज्य मन्ना लालजी महाराज, जैन दिवाकर चौथमलजी महाराज आदि भी थे। धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के स्थविर ताराचन्दजी महाराज, किशन मुनि, सौभाग्य मुनि, युवक हृदय धनचंद्र जी और खीचन के श्री इन्द्रमलजी महाराज, समर्थमलजी महाराज आदि भी पधारे थे। राजस्थान के मुनि सबके स्वागत मे तन मन मे तैयार थे। पधारे हुए प्रमुख मुनियों में स्थविर पन्नालालजी महाराज, स्थविर ताराचन्दजी महाराज, श्री चौथमलजी महाराज, श्री छगनलालजी महाराज, स्थविर मुनि सुजानमलजी और श्री भोजराजजी को संग लिये पूज्य हस्तिमलजी महाराज भी थे ।।१७५।।

।।लावणी।।

मरुधर मंत्री, नारायण अरु हेमा,
कल्प द्रुम सम लगे श्रमणजन खेमा।
मेद पाट से जोधा मोती आये,
शीतल वंश के छोगा मुनि लहराये।
मुनि मंडल की जाऊं नित बलिहारी ।।लेकर०।।१७६।।

अर्थ—मरुधर मंत्री मिश्रीलालजी जो स्वागत समिति में मुख्य थे, श्री दयालजी महाराज, मुनि नारायण और मुनि हेमराजजी भी थे। मरुभूमि में मुनिराजों के डेरे कल्पवृक्ष की तरह शोभायमान थे। मेवाड़ से पूज्य एकलिंग दास जी महाराज के पूज्य जोधराजजी, मुनि मोतीलालजी आदि और शीतलजी के श्री छोगालालजी आदि पधारे हुए थे। उस समय अजमेर में देव सभा सी शोभा नजर आ रही थी ।।१७६।।

।।लावणी।।

रत्नचन्द्र, मणिलाल—नान मुनि आवे,
नागचंद्र अरु श्याम देख सुख पावे।
सरना चित्त गुणवान् ज्ञान के रसिया,
संत बाल प्रवचन लेखन में कसिया।
परिषद् ने सद्भाव बीज दिया डारी।।लेकर०।।

अर्थः गुर्जर भूमि में शतावधानी श्री रत्नचन्द्रजी महाराज, शास्त्रज्ञ मणिलालजी महाराज, कवि नानचन्दजी, पूज्य नागचन्दजी महाराज, श्यामजी महाराज आदि के दर्शन कर बड़ा हर्ष होता था। सभी मुनि सरल चित्त, गुणवान् और ज्ञान के रसिक थे। संत बाल प्रवचन लेखन में रस लेते। इस प्रकार मुनि परिषद् ने समाज में सद्भाव के बीज गहरे डाल दिये।

।।लावणी।।

सदियों पीछे ऐसा अवसर आया,
श्रमणवर्ग में ऐक्यभाव मन लाया।
महासभा ने पूरा जोर लगाया,
चातुर्मास—व्याख्यान को एक कराया।
गण मेलन का शुभ प्रयास था भारी।।लेकर।।१७८।।

अर्थः वल्लभीपुर की मुनि परिषद् के बाद इतने बड़े समूह के रूप में मंगलमूर्ति मुनियों के एक स्थान पर एकत्र होने का यह पहला अवसर था, जो श्रमणवर्ग में ऐक्यभाव लाने के लिए सम्पन्न हुआ। महासभा ने एकता के बीज का समय समय पर सिंचन किया। सम्मेलन के बाद एकलबिहारी और स्वच्छंद साधु साध्वियों में बड़ा आतंक फैल गया था, श्रावक समाज में भी जागृति आई। समयांतर में फिरोदिया जी वकील आदि के प्रयत्नों से समाज में एक चातुर्मास और एक व्याख्यान की व्यवस्था कायम की गई।

संप्रदायों के एकीकरण का शुभ प्रयास चालू हुआ। ब्यावर में पांच संप्रदायों का एक संघ कायम हुआ। जिसका नाम वीर वर्धमान श्रमण संघ रक्खा गया।

॥लावणी॥

नव ऊपर दो सहस सादड़ी नगरे
विविध देश से आये मुनि कई सखरे।
संघ ऐक्यहित सबने चर्चा कीनी,
बहुमत ने झट ऐक्य करण की चीनी।
संयुक्त संघ की हमने बात विचारी ॥लेकर०॥१७९॥

अर्थः—कुछ काल के बाद संवत् २००९ में सादड़ी (मारवाड़) में फिर सम्मेलन करने का निश्चय किया गया। देश देश के बड़े-बड़े मुनि इकट्ठे हुए। मालवा, मेवाड़, मारवाड़ और पंजाब की कुल २१ संप्रदायों के संत और इस बार कुछ साध्वियां भी पधारीं। संघ में ऐक्य निर्माण की सबने चर्चा की। समाज में संगठन कायम किया जाय इसमें सब एकमत थे। पर कुछ संप्रदायों को रखकर संगठन बनाने के पक्ष में थे तो कई विचारक संप्रदायों को विलीन कर एक ही संघ बनाया जाय इस विचार के थे। वयोवृद्ध श्री पन्नालालजी महाराज आदि अनुभवियों का विचार था कि अभी संयुक्त संघ बना लिया जाय और इसका साल छः महीने के प्रयोग से परीक्षण एवं स्थिति का अध्ययन कर फिर पूर्ण ऐक्य स्थापित किया जाय। पर बहुमत की यह इच्छा थी कि जो कुछ करना है अभी कर लिया जाय।

॥लावणी॥

गण कायम रख भेद विचार घटाना,
संघटना कर स्थायी कदम बढ़ाना।
नीति भेद ही मूल भेद का जानो,
नीति रीति हो एक प्रीति दृढ़ मानो।
रीति नीति का एक बनो सहचारी ॥लेकर०॥१८०॥

अर्थ:—पहले पक्ष का विचार था कि वर्तमान के गच्छों को यथावत् कायम रख कर मतभेद कम किया जाय और मतैक्य करके फिर स्थायी एकता का कदम उठाया जाय। क्योंकि समाचारी और मतभेद ही संप्रदाय भेद का मुख्य कारण है। जब नीति रीति में एकता होगी तो प्रीति भी स्थायी एवं अटूट हो सकेगी। व्यवहार में भी कहा जाता है कि:—

"समान शीलव्यसनेषु सख्यम्।"

समान आचार विचार वालों में मैत्री टिकती है। अतः नीति रीति एक कर संगठन बनाया जाय।

॥ लावणी ॥

हुए नियम कई बनो योजना भारी,
लोकतन्त्र की रीत चित्त में धारी,
एक तन्त्र पर लोकतन्त्र मंडरावे,
लेन बुराई अपने शिर को च्हावे।
चलते रंग में सबने ली स्वीकारी ॥१८१॥

अर्थ: सबने बढ़े-चढ़े उत्साह में संघ ऐक्य की योजना संपन्न की और एक समाचारी के कुछ नियम तैयार किये गये। राष्ट्र का लोकतन्त्रीय ढांचा मन में रख कर संघ की रचना की गई। सारा संघ एक आचार्य के नेतृत्व में हो, इस भावना पर लोकतन्त्र मंडरा गया। बुरा न बनने के विचार से उस समय कोई नहीं बोला। किसी ने स्वेच्छा से तो किसी ने दबाव से, इस प्रकार सबने उस समय इस संघैक्य को स्वीकार कर लिया। जिनके मन में संशय था उन्होंने प्रवेश पत्र में अपना नोट भी लगा दिया।

॥ लावणी ॥

सोजत में मुनि मंत्री मिल सब आये,
समाधान हित पंडित मुनि बुलवाये।

फिर भी रह गये प्रश्न कई सुलझाने,
परामर्श हित जोधाणे मुनि माने।
दीर्घकाल तक रहे मुनि सुविचारी ।।लेकर०।।१८२।।

अर्थः - साल भर बाद ही सोजत में फिर मंत्रिमण्डल की बैठक हुई। समाचारी में संशोधन एवं पं० समर्थमलजी महाराज के समाधान का प्रयत्न किया गया। कई बातों में खुल कर चर्चाएं हुईं। फिर भी पर्व तिथि निर्णय और सचित्त—अचित्त आदि के कई प्रश्न सुलझाने अवशेष रह गये। प्रमुख मुनि किसी जगह विराज कर शास्त्रीय मतभेदों पर विचार करें ऐसा निर्णय हुआ। तदनुसार प्रमुख-प्रमुख मुनिराजों का विचार-विमर्श हेतु जोधपुर में चातुर्मास हुआ और दीर्घकाल तक मन्त्रणा कर शास्त्रीय पाठ और प्रतिक्रमण की एकता आदि पर निर्णयात्मक विचार भी किया।

॥ लावणी ॥

महामंत्री आनन्द सर्व सुखदायी,
सहमंत्री गज और प्यार कहलाई।
उपाचार्य गणेश मुनि थे नामी,
आत्माराम आचार्य संघ के स्वामी।
श्रमणसंघ की चिन्ता सबको भारी।।१८३।।

अर्थः--श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण—संघ के महामंत्री—प्रधान मंत्री श्री आनन्द ऋषिजी महाराज थे और सहमंत्री श्री गजमुनि—हस्तिमलजी महाराज व श्री प्यारचन्दजी महाराज थे जो सहायक रूप में काम करते। संघ के प्रमुख आचार्य श्री आत्मारामजी महाराज एवं उपा-चार्य श्री गणेशीलालजी महाराज निर्वाचित हुए। श्रमणसंघ की समु-न्नति के लिये ये सब निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे।

॥ लावणी ॥

दो हजार तेरह का वर्ष सुहाया,
सम्मेलन भीनासर में भरवाया।

प्रायश्चित्त—निर्णय नोखा में कीना,
जोधाणे चोमास का परिचय दीना।
मुनिमण्डल ने अपनी मुद्रा मारी ॥१८४॥

अर्थः—जोधपुर संयुक्त चातुर्मास के कार्य को मूर्त रूप देने के लिये सं० २०१२ -१३ में फिर भोनासर में सम्मेलन करना निश्चित हुआ। नोखामण्डी से ही कार्य चालू कर दिया गया। देशनोक और भीनासर तक परिषद् चलती रही। नोखामडी में प्रायश्चित्त के विषय में विचार विनिमय कर एक सर्वमान्य तालिका तैयार की गई। जोधपुर चातुर्मास की कार्यवाही के लिये कई मुनियों की राय रही कि अनुपस्थित प्रतिनिधि मंडल को सुनाकर इसे पास किया जाय, जब तक मुनिमडल की स्वीकृति नहीं हो जाती तब तक तालिका मान्य नहीं हो सकती।

॥ लावणी ॥

प्रतिक्रमण, श्रुतपाठ और समाचारी,
संयोजन प्रार्थना किया हितकारी।
पर मण्डल को छाप हेतु दुहराना,
लोकतन्त्र की महिमा रूप पिछाना।
प्रमुख प्रश्न में उलझी बुद्धि हमारी ॥लेकर०॥१८५॥

अर्थः—जोधपुर के संयुक्त चातुर्मास में साधु प्रतिक्रमण के पाठ, शास्त्र के विवादास्पद सूत्रपाठ, समाचारी और सर्वमान्य प्रार्थना का परिश्रमपूर्वक सयोजन किया गया, किन्तु कुछ प्रमुख मुनि वहां नहीं थे अतः उनको मान्य कराने हेतु पुनः दुहराना आवश्यक समझा गया। उपाचार्य श्री, प्रधानमंत्री, सहमन्त्री. प० समर्थमलजी, कविजी अमरचन्दजी महाराज और वाचस्पतिजी श्री मदनलालजी महाराज इन सब प्रमुख मुनियों ने विचारपूर्वक जो निर्णय किया उसको सर्वमान्य करने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिये थी क्योंकि मंत्री मुनियों ने ही निर्णय किया था कि पांच, छः प्रमुख मुनि चार मास रहकर शास्त्रीय विचार-चर्चा एवं निर्णय करें। फिर भी प्रतिनिधिमंडल की छाप के लिये जब सारी कार्यवाही उनके

सामने रखनी आवश्यक हुई तव हमने समझा कि लोकतंत्र की कैसी महिमा होती है। भीनासर-परिषद् का समय प्रायः ऐसे ही चला गया। कुछ प्रमुख प्रश्न ऐसे उलझे कि उनका निर्णय करना असंभव हो गया। किसी तरह सघ में विघटन न हो जाय और जैसे तैसे कार्यवाही पूरी कर के विदा हो ले, इसी में श्रेय समझा गया।

॥ लावणी ॥

यंत्र समस्या ने तनाव कर दीना,
बिगड़ी स्थिति में निर्णय मोगम कीना।
परम्परा नहीं, फिर भी जो बोलेगा,
शुद्धि हेतु प्रायश्चित्त लेना होगा।
खुला समझ बोले आतुर व्रतधारी ॥लेकर०॥१८६॥

अर्थ:—पण्डित समर्थमालजी महाराज को सघ में मिलाने का यह अन्तिम अवसर समझ कर भीनासर सम्मेलन के लिये उनको विशेष रूप से आमन्त्रण दिया गया था। यहा तक भी कहा गया कि यदि आप संघ में मिलते हों तो आपकी सब बातें मजूर की जा सकती हैं। परन्तु वे भी बड़े कुशल निकले। सब कार्यवाही देख सुनकर भी तटस्थ रह गये। यत्र समस्या ने राजस्थान और पंजाब के दो मत खड़े कर दिये बात को किनारे लाने के लिये मुनिमडल ने प्रथम निर्णय किया कि यह प्रश्न राजस्थान का नही है। जहा की समस्या है उस प्रान्त के मुनि राज मिलकर अपना निर्णय करे। परन्तु महासभा के शिष्ट मडल द्वारा यह निवेदन करने पर कि श्रमण संघ का एक ही निर्णय होना चाहिये, अन्यथा संघ दो भागों में विभक्त हो जायगा। वाद विवाद के पश्चात् एक गोल—मोल निर्णय निम्न प्रकार से किया गया.—"ध्वनियत्र में बोलना साधु—मर्यादा के विरुद्ध है पर कभी अपवादरूप में विवश हो बोलना पड़े तो प्रायश्चित लेना होगा।" प्रस्ताव की भाषा ऐसी रखी गई कि इसमें बचाव का रास्ता मान लिया गया। अपवाद रूप मे बोला गया तो प्रायश्चित्त लेना जरूरी होगा। इस प्रकार प्रस्ताव में नियन्त्रण होने पर भी बोलने की आतुरता से कुछ सन्तों ने छूट समझकर उसको चालू कर दिया।

॥लावणी॥

प्रथम चरण में अनुशासन को ढीला,
देख श्रमणगण के मन में हुई पीला।
महासभा अध्यक्ष सूरि पे जावे,
प्रायश्चित निर्णय में भेद पड़ावे।
दो धारा का वाद चला दुखकारी ॥लेकर०॥१८७॥

अर्थः—जब तक अपवाद और प्रायश्चित्त का खुलासा नहीं हो जाय तब तक ध्वनियंत्र पर बोलना अनुशासन की उपेक्षा करना था। फिर भी समझ भेद से कुछ बोल गये। प्रथम चरण में हो अनुशासन की उपेक्षा हो तब भविष्य में अनुशासन कैसे रहेगा ? संघ प्रेमियों के मन में बड़ी चिन्ता हुई। आचार्य श्री की सेवा में महासभा के अध्यक्ष ने जा कर अर्ज की, आचार्य श्री ने उपाचार्य श्री को अवगत करके एक निर्णय प्रकट करने का फरमाया पर उपाचार्य श्री को बिना बतलाये ही उसे प्रकट कर देने से दोनों महापुरुषों के बीच भेद पड़ गया। फिर दो धारा-एक धारा को ले कर वाद चला, जो संघ की उन्नति में बड़ा विघ्न रूप (बाधक स्वरूप) सिद्ध हुआ।

॥लावणी॥

मुख्य मंत्री वाचस्पति मन अकुलाये,
त्यागपत्र में अपने भाव बताये।
गणिवर से नहि समाधान कर पाये,
यत्न करत भी प्रश्न सुलझ नहि पाये।
शुद्धिकरण और पर्व में उलझे भारी ॥लेकर०॥१८८॥

अर्थः—भीनासर सम्मेलन में वाचस्पति मदनलालजी महाराज को प्रधानमंत्री बनाया गया था। पर अनुशासन हीन स्थिति को देखकर आपके मन में बड़ा दुख हुआ। उन्होंने आचार्य श्री की सेवा में, अपना समाधान न होने की स्थिति में त्यागपत्र दे दिया। पत्राचार में आचार्य श्री से समाधान नहीं हो सका फिर आचार्य श्री ने मिल कर बात करने का प्रस्ताव

रखा, पर ऐसा नही हो पाया। प्रधान मंत्री के अभाव मे श्रमणसंघ का कार्य और भी अधिक उलझ गया। शुद्धिकरण, ध्वनिग्रंत्र और सवत्सरी पर्व की समस्या में सब परस्पर उलझने लगे। फलस्वरूप संघ की प्रगति अवरुद्ध हो गई।

॥लावणी॥

उपाचार्य आचार्य में पड़ गई खाई,
सुलझाने को जब युक्ति नहीं पाई।
निर्णय हित मुनियों की समिति बनाई,
उपाचार्य ने दिया संघ छिटकाई।
श्रमणसंघ के हित में चोट करारी ॥लेकर०॥१८६॥

अर्थ आचार्य और उपाचार्य के बीच की खाई को पाटने के जितने प्रयास किये गये वे सब विफल हुए। उपाध्याय मुनि श्री हस्तिमल्लजी महाराज द्वारा प्रस्तुत की गई सप्त सूत्री योजना मे कार्य नही हुआ। निमित्त पाकर स्थिति अधिक उलझती गई। अन्त में आचार्य श्री ने एक परामर्श समिति का निर्वाचन किया और विवादास्पद प्रश्नों के निर्णय हेतु उसको पूर्ण अधिकार प्रदान किये। बदली हुई स्थिति मे उपाचार्य श्री ने भी संघ मे सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। इससे संघ को असमय में बड़ी घातक चोट पहुंची।

॥ लावणी ॥

मंत्री का खाडा नहि भरने पावे,
उपाचार्य भी संघ त्याग कर जावे।
देख दशा हितचिन्तक मन घबरावे,
उपाध्याय इक उदियापुर को जावे।
समाधान हित गणी से बात विचारी ॥लेकर०॥१६०॥

अर्थ:—प्रधान मंत्री का रिक्त स्थान भरने से पहले ही उपाचार्य श्री ने संघ त्याग दिया, ऐसी स्थिति में संघ का संचालन कैसे हो, इस

सम्बन्ध में हितचिन्तकों के मन में बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई। स्थिति को सुलझाने के लिये उपाध्याय श्री हस्तिमलजी ने सोचा कि उदयपुर जा कर उपाचार्य श्री को कुछ अर्ज किया जाय और समाधान का मार्ग ढूंढने की कोशिश की जाय। उन्होंने उपाचार्य श्री से वार्ता की एवं श्रमणसंघ में रह कर कार्य करने की प्रार्थना की।

॥लावणी॥

अशुभ योग नहिं बात बैठने पाई,
श्रावक जन भी रहे न मुख्य सहाई।
श्रमणसंघ में कैसे हो दृढ़ताई,
संभल चले अब भी इसमें चतुराई।
अजरामर में किया मिलन फिर जहारी ॥लेकर०॥१६१॥

अर्थः—संयोग की बात, उपाचार्य श्री के साथ वातचीत में सफलता नहीं मिली, श्रावक वर्ग की ओर से सहकार मिलने की आशा थी पर वह भी जैसा चाहिये वैसा नहीं मिल सका। परस्पर की भ्रान्ति से अधिकारियों के मन में टूटा हुआ प्रेम का धागा फिर से जोड़ कर श्रमण संघ को शक्तिशाली कैसे बनाया जाय, यह विचार चल रहा था। पर इसी बीच शिथिलाचार और अनुशासनहीनता ने संघ में पार्टी खड़ी करदी श्रमणों के पारस्परिक संबंध शिथिल हो गये। परामर्श समिति के संयोजक उपाध्याय आनन्द ऋषिजी महाराज साहब ने अजमेर में फिर सम्मेलन की घोषणा की।

॥ लावणी ॥

आश लिये जन दूर दूर से आये,
ऋषिवर के चरणों में भाव सुनाये।
समाधान हित सबको अवसर दीना,
संघ शुद्धि हित ठोस कदम नहीं लीना।
आचारज पद का हुआ उत्सव भारी ॥लेकर०॥१६२॥

अर्थः—एक बार फिर आशा की किरण प्रकट हुई, क्योंकि आचार-निष्ठ संयोजक आनन्द ऋषिजी महाराज साहब के नेतृत्व में काम हो रहा था। लोग दूर दूर से आशा लिये आये और मुनियों ने भी ऋषिजी के चरणों में अपने भाव सुनाये। कार्यवाही का आरम्भ उपाध्याय हस्तीमलजी की तालिका से ही किया गया। सम्मेलन के नियमों का आज तक कैसा पालन हुआ, उसकी झांकी प्रस्तुत की गई। सबको अपनी बात रखने का मौका मिला। पर अलग अलग ग्रुप बने हुए थे, संघ—शुद्धि और शिथिलाचार निवारण की बात श्रावक संघ की ओर से भी रखी गई पर भविष्य की हिदायत देने के अतिरिक्त कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया। हां, शास्त्रीय प्रवर्तक पद और गण व्यवस्था मान ली गई। संघ को चलाने हेतु बड़े ठाट से उपाध्याय आनन्द ऋषिजी महाराज को आचार्य पद पर आरूढ़ कर मंगल समारोह की समाप्ति कर दी गई।

।लावणी।।

आनन्द के शासन में संयम दीपे,
उज्वल अनुशासन से पर बल जीपे।
गणाधिकारी निज अधिकार निभाते,
मुनिजन अपना नैतिक धर्म बजाते।
तो आशा हो जाती सफल हमारी।। लेकर० ।।१६३।।

अर्थः– आचार्य आनन्द ऋषि जी के शासन में श्रमणसंघ का संयम देदीप्यमान होकर चमकेगा और व्यवस्थित अनुशासन से श्रमणसंघ से अलग रहने वाले भी प्रभावित होंगे, ऐसी आशा थी। प्रत्येक गण के प्रवर्तक निष्ठापूर्वक अपना अधिकार निभाते और साधु-साध्वी वर्ग अपना नैतिक कर्त्तव्य अदा करते तो अवश्य ही हमारी आशा सफल होती, पर हुआ इससे बिल्कुल विपरीत। संघ में संगठन का दिखावा मात्र रहा, संयमशुद्धि और अनुशासन की भावना निकल गई।।१६३।।

एक नई उलझन

।।लावणी।।

दिल्ली में आचार्य मिलन हुआ शानी,
पर्व ऐक्य की बात सूरि ने मानी।
परामर्श पीछे मुनियों से लीना,
ऐक्य देख खतरे में मुनि मन भीना।
पूर्ण ऐक्य हित देवें नीति विसारी ।। लेकर० ।।१९४।।

अर्थः भारत की राजधानी दिल्ली में संगठन प्रेमी कार्यकर्त्ताओं के प्रयत्न से तेरा पंथ, दिगम्बर और स्थानकवासी श्रमणसंघ के आचार्यों का शानदार मिलन हुआ। जैन एकता के प्रसंग से आ० तुलसीजी ने कहा— श्वेताम्बरों के सांवत्सरिक पर्व की समाप्ति और दिगम्बरों के सांवत्सरिक पर्व का आरंभ एक दिन है। उसे सर्व सम्मत पर्व मान लिया जाय तो समस्या सुलझ सकती है। आचार्य श्री ने कान्फ्रेन्स के परामर्श से इस निर्णय को स्वीकार कर लिया। बाद में मुनियों से मंजूरी लेने आये, जब कि मुनि परामर्श समिति को पहले पूछना था। अधिकांश मुनियों ने कहा— जैन समाज का सम्पूर्ण ऐक्य होता हो तो भीनासर सम्मेलन के निश्चयानुसार हम सर्वथा तैयार हैं। अन्यथा ४९ ५० दिन की परम्परा को छोड़ना उचित नहीं समझते क्योंकि ऐसा करने से हम सौराष्ट्र के स्थानकवासी जैन संघ से भी अलग पड़ जाते हैं ।।१९४।।

मध्यम मार्ग

।। लावणी ।।

संघ भेद टालन का मार्ग निकाले,
श्रावण में कर श्रमण, भादवा पाले।
शासनहित सबने यों मान्य कराया,
अगला निर्णय वर्ष मध्य में चाह्या।
पर आगे को निर्णय दिया विसारी ।। लेकर० ।।१९५।।

अर्थः– पर्व के निमित्त से श्रमणसंघ का भंग न हो जाय इसलिये

लुधियाना से आचार्य श्री ने एक संदेश प्रेषित किया कि साधु-साध्वी भले ही परम्परानुसार श्रावण में पर्व मनावें किन्तु श्रावकसंघ को सार्वजनिक रूप से भादवा में शास्त्र आदि सुनावें अर्थात् छुट्टी आदि समाज के व्यावहारिक कार्य एक दिन किये जायं। शासनहित को ध्यान में रख कर सबने इस शर्त के साथ स्वीकार किया कि आगे के लिये स्थाई निर्णय एक वर्ष के अन्दर अन्दर हो जाना चाहिये।

पहले की तरह इस बार भी महासभा की तरफ से इस वचन का पालन नहीं हुआ। दूसरी साल पक्खी-पत्र और जैन पचांग का निर्णय भी समय पर नहीं हो सका। फलस्वरूप अलग अलग पक्खी-पत्र निकलने लगे ॥१६५॥

॥लावणी॥

जैन जगत् में पर्व न एक मनाया,
सोरठ में दो पर्व प्रथम ही आया।
श्रमणसंघ की उलझी गुत्थी सवाई,
सबके मन थी अपनी मान बड़ाई।
दलबन्दी ने सब ही बात विसारी॥ लेकर० ॥१६६॥

पर्व की भिन्नता

अर्थ:—कार्यकर्त्ताओं की अदूरदर्शितापूर्ण नीति से श्वेताम्बर समाज में तीन पर्व मनाये गये। तेरापंथ, दिगम्बर और श्रमणसंघानुयायी स्थानकवासियों ने भादवा सुदी ५ को, श्वेताम्बर तपागच्छ के अनुयायियों ने भादवा सुदी ४ को, खरतरगच्छ, आँचल गच्छ और सौराष्ट्र के स्थानकवासियों ने प्राय: श्रावण में पर्व मनाया। इस प्रकार समाज छिन्न-भिन्न हो गया। सौराष्ट्र में अलग अलग पर्व मनाने का प्रसंग पहला ही था। इस प्रकार श्रमणसंघ की गुत्थी अधिक उलझ गई। संघ के हित की अपेक्षा सब अपनी-अपनी बात के लिये चिंतित थे। कांफ्रेंस के अधिकारी भी अपनी बात को सही साबित करने की धुन में रहे। परिणामस्वरूप अधिकारी समाज में अपनी विश्वस्तता खो बैठे ॥१६६॥

हितैषियों का बहिर्गमन

॥ लावणी ॥

हस्ती, पन्ना देख दशा अकुलाये,
गणिवर को अपना ज्ञापन कहलाये।
हो निराश जिन शासन रीत निभाने,
संघ पार्टी का त्याग किया मनमाने।
यथाशक्ति शासन सेवा ली धारी॥ लेकर० ॥१९७॥

अर्थः—वयोवृद्ध प्र० श्री पन्नालालजी महाराज साहब और उपाध्याय श्री हस्तीमलजी महाराज साहब को यह दशा देखकर बड़ा खेद हुआ, उन्होंने आचार्य श्री को ज्ञापन किया कि संघ की व्यवस्था न सुधरने पर हम लोगों को निराश हो संघ से अलग होना पड़ेगा। जिन शासन की रीति निभाने और कषाय-वृद्धि से बचने के लिये २०२५ में दोनों ने संघ से अपना संबंध विच्छेद कर लिया। शक्तिपूर्वक स्वतन्त्ररूप से शासन और संघ की सेवा करना, यही इन दोनों की भावना रही। श्रमणसंघ कहीं छिन्न-भिन्न नहीं हो जाय इस दृष्टि से इन्होंने अपने सहयोगी मरुधर मुनि श्री चांदमल जी महाराज साहब और पं० श्री पुष्कर मुनि को भी संघ त्याग की प्रेरणा नहीं दी ॥१९७॥

॥ लावणी ॥

जनपद में आजादी का युग आया,
जैन जगत् ने भी कुछ पलटा खाया।
सम्प्रदाय के झगड़े कोई न चहावे,
प्रेम मिलन को बाहर कदम बढ़ावे।
कपटभाव अन्तर से कर दो न्यारी॥ लेकर० ॥१९८॥

वर्तमान में क्या करें

अर्थः— देश में जब से आजादी का युग आया धार्मिक जगत् और खास कर जैन समाज ने भी अपना रूप बदल दिया। संप्रदाय के झगड़े

अब कोई नहीं चाहता। परस्पर की निन्दा और वादविवाद का वातावरण बदल गया। सब एक दूसरे से मिलने एवं एक साथ व्याख्यान की बात करने लगे, पर अन्तर में सम्प्रदायवृद्धि और अपनी प्रमुखता को सबसे ऊपर और सबसे आगे रखने का कपट भाव नही गया। यदि सरल एवं शुद्ध भाव से काम किया जाय तो जिन शासन का हित हो सकता है ॥१९८॥

॥ लावणी ॥

संघ शक्ति का सब ही नाद बजावे,
संयम बल से पीछे कदम हटावे।
आडम्बर को बुरा कहत अपनावे,
राजनीति को धर्म मार्ग में लावे।
मुनियों ने भी मानव-हित को धारी ॥ लेकर० ॥१९९॥

अर्थः—आज का यह सामूहिक नारा "संघे शक्ति" यानि संघ में ही शक्ति है, सभी की ओर से बुलन्द किया जा रहा है पर संयम-बल की खामी को मिटाना नहीं चाहते, कमजोरियों को समन्वय से चलाना चाहते हैं, आडम्बर को बुरा बताकर भी नित नये रूप में आडम्बर अपनाते जा रहे हैं। सच बात तो यह है कि धर्म मार्ग में भी आज राजनीति प्रवेश पा रही है। जैन साधु जो किसी समय प्रवृत्तिमार्ग से दूर रहने में ही श्रेय मानते थे, वे भी आज मानवहित और राष्ट्रसुधार के नाम से राजनीति के नेताओं को प्रसन्न करने में लगे हैं ॥१९९॥

॥ लावणी ॥

बुद्धिवाद से भेद मिटें नहीं सारे,
समतावाद ही जग का संकट टारे।
अनेक में जो एक तत्व पहचाने,
एक धर्म का विविध रूप जग जाने।
अनेकान्त सम्यक् जन जन सुखकारी ॥लेकर०॥२००॥

सही मार्ग

अर्थः—बुद्धिवाद से अपनी बात इच्छानुसार बैठाई जा सकती है पर उससे मतभेद का अन्त नहीं होता। विश्व में शान्ति तो समतावाद से ही आ सकती है। सम्यक् अनेकान्तवाद ही सब जन के लिये सुखकारी हो सकता है। यदि उसको अपना लिया जाय तो अविद्या की सारी आंधी छिन्न-भिन्न हो सकती है ॥२००॥

॥ लावणी ॥

शुक्लांबर, आकाशाम्बर, ज्ञान पुजारी,
तेरापंथ अरु निश्चयनय के धारी।
सरलभाव से अपनी शाख चलावे,
पर भीतर में झगड़ा नहीं दिखावे।
धर्मनीति की शिक्षा दें मिल प्यारी ॥ लेकर० ॥२०१॥

सम्प्रदायों का कर्त्तव्य

अर्थः—"जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि" इस कहावत के अनुसार हर आचार्य ने अपनी दृष्टि के अनुसार शास्त्र के आधार से मार्ग पकड़ा और उसी को सत्य समझ कर प्रचार करने लगे। फलस्वरूप कोई श्वेताम्बर, कोई दिगम्बर, कोई ज्ञानवादी-कविपंथ, तेरापंथ, निश्चयवादी-आत्मधर्मी आदि सम्प्रदायें चल पड़ी। जिनशासन की शोभा और विश्वहित की दृष्टि से यह परमावश्यक है कि वे सब सरलभाव से अपनी शाखाएं चलाना चाहें तो चलावें पर भीतर में रागद्वेष बढ़ा कर एक दूसरे की निंदा नहीं करें अपने को ऊंचा और दूसरे को नीचा नहीं दिखाये। सामान्यजनों में मिल जुल कर अहिंसा, सत्य, सदाचार की शिक्षा देकर धर्म को पुष्ट करें ॥२०१॥

॥लावणी॥

सद् विचार रक्षण से जनमन भावे,
टकरा कर अपनी नहिं शक्ति गमावे।

सम्प्रदाय में दोष न तब लग जानो,
वाद करण में करे न अपनी हानो।
धर्म-नीर हित सम्प्रदाय की क्यारी ।। लेकर० ।।२०२।।

सम्प्रदाय की उपयोगिता

अर्थः– देश मे सुलभता से धर्म प्रचार करने के लिये छोटे छोटे वर्ग बनाकर जनता को सन्मार्ग पर चलाना सम्प्रदाय का काम है। सम्प्रदायों ने देश में सदाचार और नीति का रक्षण किया है। यदि परस्पर टकरा कर अपनी शक्ति व्यर्थ नहीं खोये तो उसमें कोई दोष नही है। वादविवाद में पड़कर इन सम्प्रदायों को अपनी हानि नहीं करनी चाहिये।

धर्म के स्वच्छ जल की रक्षा के लिये सम्प्रदाय एक क्यारी है। बिना सम्प्रदाय के धर्म की रक्षा देह बिना आत्मा के अस्तित्व की तरह है। सम्प्रदाय की उपयोगिता धर्म रूपी जल को निर्मल एवं सुरक्षित रखने मे ही है ।।२०२।।

।।लावणी।।

संप्रदाय का वाद दोष दुखकारी,
परगण की अच्छी भी लगती खारी।
पर उन्नति को देख द्रोह मन लावे,
स्पर्धा से अपने को नहीं उठावे।
वाद यही है अशुभ अमंगलकारी ।। लेकर० ।।२०३।।

सम्प्रदाय का दोष

अर्थ.—अपनी मान्यता का आग्रह ही दुखदायी दोष है। अपनेपन के आग्रह मे अन्य समुदाय की अच्छी बात को भी बुरी मानना और अपनी बुरी बात को भी राग मे अच्छी समझना, यह सम्प्रदायवाद है। सम्प्रदायवादी दूसरे की उन्नति देखकर मन ही मन जलता रहता है किन्तु स्पर्धा से दूसरे का अनुसरण कर अपना उत्थान नहीं कर पाता। यह वाद ही

सम्प्रदाय का अमंगलकारी, अशुभ रूप है। इससे सदा बचते रहना लोक-हित में उपयोगी है ।।२०३।।

।।लावणी।।

धर्म प्राण तो संप्रदाय काया है,
करे धर्म की हानि वही माया है।
बिना संभाले मैल वस्त्र पर आवे,
सम्प्रदाय में भी रागादिक छावे।
वाद हटाये सम्प्रदाय सुखकारी ।। लेकर० ।।२०४।।

समन्वय

अर्थ:—धर्म और सम्प्रदाय का ऐसा सम्बन्ध है जैसा जीव और काया का। धर्म को धारण करने के लिये सम्प्रदाय रूप शरीर की आवश्यकता होती है। धर्म की हानि करने वाला संप्रदाय, संप्रदाय नहीं, अपितु वह तो घातक होने के कारण माया है। बिना संभाले जैसे वस्त्र पर मैल जम जाता है, वैसे ही संप्रदाय में भी परिमार्जन-चिन्तन नहीं होने से रागद्वेषादि मैल का बढ़ जाना संभव है। पर मैला होने से वस्त्र फेंका नहीं जाता, अपितु साफ किया जाता है। वैसे ही विकारों के कारण संप्रदाय का त्याग करने की अपेक्षा विकारों का निराकरण कर संप्रदाय का शोधन करना ही श्रेयस्कर है ।।२०४।।

।। लावणी ।।

पर समह की अच्छी भी बद माने,
अपने दूषण को भी गुण न माने।
दृष्टिराग को छोड़ बनो गुणरागी,
उन्नत कर जीवन हो जा सोभागी।
साधन से लो साध्य बनो अविकारी ।। लेकर० ।।२०५।।

अर्थ:—सम्प्रदाय की दृष्टि यह होती है कि अपने अतिरिक्त किसी अन्य समुदाय में अच्छाई हो ही नहीं सकती, उसकी दृष्टि में अच्छी भी

पराई होने से बुरी है। किन्तु गुणवादी जहाँ भी गुण देखता है उसे अपना समझता है, उससे प्रेम करता है। दृष्टि-राग को छोड़ कर गुण के भक्त बनो, गुणग्रहण करने से अपना जीवन उन्नत होगा। वास्तव में साधन से वीतराग भावरूप साध्य को प्राप्त करना ही अविकारी होने का मार्ग है ॥२०५॥

॥ लावणी ॥

सहस बीस एक पंचमकाल कहावे,
अन्त समय तक शासन सत्व बतावे।
चढ़ उतार की रीति सदा चल आवे,
उदय अस्त समरूप ज्ञानी जन गावे।
अन्त समय भी होगा भव-अवतारी ॥ लेकर० ॥२०६॥

अर्थः इस समय पंचम काल चल रहा है जो इक्कीस हजार वर्ष प्रमाण का है। ढ़ाई हजार वर्ष के लगभग का समय बीत चुका है, अभी १८५०० वर्ष से अधिक शेष है। शास्त्रीय मान्यता के अनुसार अन्त समय तक साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ का अस्तित्व माना गया है। उन्नति अवनति का क्रम, चढ़ाव उतार के रूप में सदा से चला आ रहा है। इसी को स्थूल दृष्टि से शासन का उदय और अस्त कहा गया है। अन्तकाल तक भी एक भव करके मुक्ति प्राप्त करने वाली आत्माएं होंगी। फिर आज ही हताश होने जैसी क्या बात है ? ॥२०६॥

आवश्यकता है:—

॥ लावणी ॥

शिथिल संघ को देख न चित अकुलावें,
सुप्त पराक्रम को कुछ तेज करावें।
अर्थ-लाभ सम धर्म-लाभ मन भावे,
जन जन में शासन की जोत जगावें।
धर्म मिशन हित त्याग करो नर नारी ॥लेकर०॥२०७॥

अर्थ: वर्तमान में संघ और उसके आचार की शिथिलता को देखकर बहुत से लोग अधीर हो जाते हैं। वास्तव में अधीर होने की आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है सोये हुए पौरुष को जगाने की। महाराज बिम्बसार और सम्प्रति आदि के समान आपको फिर अपना धर्म प्रेम सक्रिय करना होगा। अर्थलाभ के समान धर्मलाभ की भी मन में भूख जगानी होगी। जब सब लोग धर्म कार्य के लिये योग देने हेतु तैयार हो जायेंगे तो जन जन में जैन शासन की ज्योति जलने देर नहीं लगेगी ॥२०७॥

प्रशस्ति

॥ लावणी ॥

वर्द्धमान शासन के भूधर मुनिवर,
पूज्य धर्म के पौत्र शिष्य हैं सुखकर।
भूधर गरिण के शिष्य कुशल-जय भ्राता,
गुमान, दुर्गादास भाग्य निर्माता।
संघ शिरोमणि रत्नचन्द्र सुखकारी ॥ लेकर० ॥२०८॥

अर्थ: भगवान् श्री महावीर के शासन काल में भव्य जीवों को वीतराग धर्म के उपदेशामृत से परमानन्द प्रदान करने वाले पूज्य धर्मदास जी महाराज बड़े यशस्वी मुनि हुए। उनके पौत्र-शिष्य (शिष्य के शिष्य) भूधर जी महाराज बड़े ही प्रतापी सन्त हुए हैं। पूज्य भूधरजी महाराज के शिष्य कुशलजी श्री जयमलजी के गुरुभाई थे। पूज्य कुशलजी के शिष्य श्री गुमानचन्दजी और दुर्गादासजी संघ के भाग्य निर्माता अर्थात् नवनिर्माण करने वाले हुए। उनके पश्चात् आचार्य रत्न चन्द्रजी संघ के शिरोमणि हुए ॥२०८॥

॥ लावणी ॥

रत्नचन्द के शिष्य हमीर सुहाये,
पटधर तीजे पूज्य कजोड़ी भाये।
विनयचन्द्र श्रुतधर प्रतिभा के स्वामी,

लघु भाई सौभाग्य हुए गुरु नामी ।
अन्तेवासी हस्ती ने मन धारी ॥ लेकर० ॥ २०६ ॥

अर्थ—रत्नचन्द्रजी के शिष्य पूज्य हमीरमलजी महाराज हुए और तीसरे पट्टधर पूज्य कजोडीमल जी महाराज, चतुर्थ पूज्य श्री विनयचन्द्र जी महाराज शास्त्रों के ज्ञाता और प्रतिभाशाली मुनिराज थे । उनके छोटे गुरुभाई पूज्य सोभाग्यमलजी महाराज बड़े ही यशस्वी संत हुए हैं । उनके शिष्य "हस्तीमल' (पूज्य हस्तीमल जी महाराज) के मन में गुरुभक्ति से भूतकाल के इन आचार्यों का गुणगाथा गाने की भावना जागृत हुई ॥२०६॥

॥ लावणी ॥

दो हजार छब्बीस डेह गढ़ माँहि,
भक्ति सहित गुणगाथा मैंने गाई ।
परंपरा औ ग्रन्थ पटावली लख कर '
किया काव्य निर्माण हृदय प्रीति धर ।
हंस दृष्टि से करें सुज्ञ गुणधारी ॥लेकर०॥॥२१०॥

अर्थः—संवत् २०२६ में डेह गांव में पूर्ण भक्ति के साथ यह गुण-गाथा गाई । संत परम्पराओं, ऐतिहासिक ग्रन्थों और पट्टावलियों का सम्यक् प्रकार से विश्लेषणात्मक अध्ययन करके बड़े प्रेम के साथ मैंने इस काव्य का निर्माण किया है । विद्वान् पाठक हंस जैसी 'क्षीर नीर विवेक" बुद्धि से इस काव्य में से गुणों को ग्रहण कर और संशोधनीय स्थलों के लिये प्रेम से सूचना करें तो यथोचित ध्यान दिया जायगा ।

(परिशिष्ट)

लोंकागच्छ की परम्परा

विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ काल में जैन समाज में एक धार्मिक क्रान्ति हुई, जिसके सूत्रधार थे लोंकाशाह। लोंकाशाह ने शास्त्र-लेखन के प्रसंग से जैन धर्म के आचार मार्ग को जिस प्रकार समझा, समाज की तत्कालीन चर्या उससे पूर्णतः भिन्न पाई। यह देख कर आपको बड़ा आघात पहुंचा और आपने समाज के सम्मुख सत्य को प्रकट कर दिया। विरोध के तीव्रातितीव्र तीक्ष्ण एवं कटु वातावरण में भी आप सत्य का प्रचार एवं प्रसार करते रहे। पीछे नहीं हटे। पुराने थोथे बाह्याडम्बरों से लोग घबरा कर ऊब चुके थे। धर्म में आये हुए विकारों से सबही सच्चे धर्म प्रेमियों को बड़ी चिन्ता थी, आत्मार्थियों की आन्तरिक कामना थी कि शुद्ध संयम मार्ग की विजय वैजयन्ती पुनः फहराई जाय।

संवत् १६३६ के तपागच्छीय यति श्री कान्तिविजय जी के लेखानुसार लोंकाशाह ने सं० १५०९ में सुमतिविजयजी के पास दीक्षा ग्रहण की थी। लोंकाशाह के उपदेशों से सौराष्ट्र के धर्मवीर जागृत हो उठे, सेठ लखमसी भाणाजी, ननजी आदि भक्तों ने त्याग का झण्डा उठा लिया और अल्प समय में ही सैकड़ों की संख्या में आत्मार्थी साधु बन गये।

व्यवस्थित इतिहास लेखन के अभाव में आज पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं हो रही है। फिर भी इतना स्पष्ट है कि लोंकागच्छ के साधुओं ने बहुत थोड़े समय में ही बहुत अच्छी सफलता प्राप्त कर ली। किन्तु पारस्परिक फूट एवं मान-सम्मान की भूख व पूज्य होने की स्पृहा के प्रवाह ने इस धार्मिक क्रान्ति को भी अधिक काल तक टिकने नहीं दिया। आठ पाटों के बाद ही उनके आचार विचारों में पुनः शिथिलता आने लग गई और जैन साधु फिर से पालखी सरोपावधारी यति बन गये।

ऋषि जीवाजी के पश्चात् लोंकागच्छ अनेक भागों मे विभक्त हो गया। ये विभक्त समुदाय मुख्य रूप से गुजराती लोंका, नागोरी लोंका, और लाहोरी उत्तरार्ध लोंका नाम से कहे जाने लगे।

जीवाजी ऋषि गुजरात में विचरे इसलिये उनका परिवार गुजराती

लोंकागच्छ के नाम से पुकारा जाने लगा। जीवाजी ऋषि के कई शिष्य हुए। उनमें से संवत् १६१३ में वीरसिहजी ऋषि को बड़ोदा में पदवी दी गई। और दूसरी ओर बालापुर में कुंवरजी ऋषि को पूज्य पद प्रदान किया गया। तब से एक मोटी पक्ष के और दूसरे न्हानो पक्ष के कहलाने लगे। पहले को केशवजी का पक्ष और दूसरे को कुंवरजी का पक्ष भी कहते हैं। दोनों की परम्परा निम्न प्रकार है :--

(१) भाणाजी ऋषि ने सर्वप्रथम सं० १५३१ में यह बीडा उठाया। आप सिरोही क्षेत्र के अरहटवाडा ग्राम के निवासी थे। आपकी जाति पोरवाल व कुल ऋद्धिमान् था। आपने अहमदाबाद मे दीक्षा ग्रहण की। स्व० मणिलालजी महाराज के लेखानुसार आपके साथ ४५ व्यक्तियोंने दीक्षा ग्रहण की थी।

(२) भाणजी ऋषिजी के पट्टधर भद्दा ऋषि हुए। आप सिरोही के साथरिया गोत्री ओसवाल थे। संघवी तोला आपके भाई थे। प्राचीन पत्र के लेखानुसार आपने विपुल ऋद्धि को छोड कर ४५ व्यक्तियों के साथ दीक्षा ग्रहण की जिनमें आपके कुटुम्ब के भी चार व्यक्ति सम्मिलित थे।

(३) भद्दा ऋषिजी के पास नना ऋषि दीक्षित हुए। आप भी जाति मे ओसवाल थे।

(४) ऋषि नना के पास भीमा ऋषि दीक्षित हुए। आप पाली मारवाड के निवासी लोढा गोत्र के ओसवाल थे। लाखों की सम्पदा छोड कर आप दीक्षित हो गये।

(५) ऋषि भीमा के पट्टधर ऋषि जगमाल हुए। आप उत्तराध (थराद) क्षेत्र के मथर ग्राम के निवासी सुराणा ओसवाल थे। मणिलाल जी महाराज ने आपको नानपुरा निवासी बतलाया है और इनका दीक्षा-काल १५५० लिखा है।

(६) ऋषि जगमाल के पश्चात् ऋषि सखा हुए। स्व० मणिलाल जी महाराज के लेखानुसार आपकी जाति ओसवाल थी और आप बादशाह के वजीर थे। ऋषि जगमाल का उपदेश सुनकर जब आप दीक्षित होने को उद्यत हुए, उस समय बादशाह ने उनसे सवाल किया--"सखा तुम साधु क्यों बनते हो?"

सरवाजी ने उत्तर दिया—'दुनिया में मनुष्य चाहे जितनी मौज मना ले पर आखिर में यहां सबको मरना है। मैं ऐसा मरण चाहता हूँ कि जिससे फिर बारम्बार नहीं मरना पड़े। इसी लिये संसार छोड़ता हूँ।"

यह सुन कर बादशाह निरुत्तर हो गया। सं० १५५४ में आपने दीक्षा ग्रहण की।

(७) ऋषि सरवा के पश्चात् सातवें पट्टधर ऋषि रूपजी हुए। आप 'अणहिल्लपुर पाटण' के निवासी व जाति के वेद महता थे। आपका जन्म काल सं० १५५४ और दीक्षाकाल सं० १५६८ है। स्व० मणिलालजी महाराज के लेखानुसार आपने १५६६ दीक्षा ग्रहण की और सं० १५६८ में पाटण ग्राम में २०० घरों को श्रावक बनाया। सं० १५८५ में संथारा कर पाटण में ही आप स्वर्गवासी हुए। संथारे का काल प्राचीन पत्र में २॥ दिन और स्व० मणिलालजी महाराज के लेखानुसार ५२ दिन का माना गया है। आपने ऋषि जीवाजी को अपना पट्टधर आचार्य नियुक्त किया।

(८) आठवें पट्टधर ऋषि जीवाजी हुए। आप सूरतवासी डोसी तेजपाल के पुत्र थे। माता कपूर देवी की कुक्षी में सं० १५५१ की माघ वदी १२ को आपका जन्म हुआ। संवत् १५७८ की माघ सुदी ५ को आप सूरत में ऋषि रूपजी के पास दीक्षित हुए। दीक्षा ग्रहण करने के समय आपकी आयु लगभग २८ वर्ष की थी।

संवत् १५८५ में अहमदाबाद के झवेरी वाड़ा में लूंकागच्छ के नवलखा उपाश्रय में आपको आचार्य पद दिया गया। सूरत में प्रतिबोध दे कर आपने ६०० घरों को श्रावक बनाया। आपके शिष्यों में अनेक बड़े विद्वान और प्रभावशाली थे।

संवत् १६१३ के द्वितीय ज्येष्ठ की दशमी को संथारा कर ५ दिन के अनशन में आप स्वर्गवासी हुए। स्व० मणिलालजी महाराज लिखते हैं कि एक समय सिरोही राज्य दरबार में शिवमार्गी और जैन मार्गियों के बीच विवाद चल पड़ा। उसमें जैन यतियों को हार जाने के कारण देश निकाले का राज्य की ओर से आदेश हो चुका था। पूज्य जीवाजी ऋषि को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने अपने शिष्य बड़े

वरसिंहजी और कुंवरजी को शास्त्रार्थ करने का आदेश दिया। जीवाजी ऋषि के इन दोनों शिष्यों ने वहां जाकर चर्चा में विजय प्राप्त की। इससे संघ में बड़ी प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

जीवाजी ऋषि के बाद संघ दो भागों में विभक्त हो गया। इसी समय में जीवाजी ऋषि के शिष्य जगाजी के एक शिष्य जीवराज जी हुए, जिन्होंने संवत् १६०८ के लगभग क्रिया-उद्धार किया।

कहा जाता है कि इस समय लोंकागच्छ में ११०० ठाणा थे किन्तु संगठन के टूटने एवं अन्यान्य कारणों से उनके तीन-चार भाग हो गये। मणिलालजी महाराज ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ १८२ पर जीवराजजी महाराज को केशवजी गच्छ के ६ क्रियोद्धारक आत्मार्थी संतों का साथी माना है और इस क्रिया उद्धार का समय १६८६ के बाद का लिखा है। जो परस्पर विरुद्ध है। हमारी गवेषणा के अनुसार पूज्य जीवराज का क्रिया उद्धार काल विक्रम संवत् १६६६ के लगभग होना चाहिए। सही स्थिति का पता ठोस ऐतिहासिक प्रमाणों के उपलब्ध होने पर ही चल सकता है।

गुजराती लोंकागच्छ मोटी पक्ष और न्हानी पक्ष की पट्टावली

जीवाजी ऋषि के बड़े शिष्य वरसिंहजी ऋषि को सं० १६१३ की ज्येष्ठ वदी १० के दिन बड़ोदा के भावसारों ने श्री पूज्य की पदवी प्रदान की। तब से गुजराती लोंकागच्छकी मोटी पक्ष की गादी बड़ोदा में कायम हुई।

मोटी पक्ष की पट्टावली	न्हानी पक्ष की पट्टावली
(९) वरसिंहजी ऋषि बड़े	(९) कुंवरजी ऋषि
(१०) लघु वरसिंहजी ऋषि	(१०) श्री मल्लजी ऋषि
(११) जसवन्त ऋषिजी	(११) श्री रत्नसिंहजी ऋषि
(१२) रूपसिंहजी ऋषि	(१२) केशवजी ऋषि
(१३) दामोदरजी ऋषि	(१३) श्री शिवजी ऋषि

(१४) कर्मसिंहजी ऋषि
(१५) केशवजी ऋषि
(१६) तेजसिंहजी ऋषि
(१७) कानजी ऋषि
(१८) तुलसीदास जी ऋषि
(१९) जगरूपजी ऋषि
(२०) जगजीवनजी ऋषि
(२१) मेघराजजी ऋषि
(२२) श्री सोमचन्द्रजी ऋषि
(२३) श्री हरखचन्द्रजी ऋषि
(२४) श्री जयचन्द्र जी ऋषि
(२५) श्री कल्याणचन्द्रजी ऋषि
(२६) श्री खूबचन्द्र सूरीश्वर
(२७) श्री न्यायचन्द्र सूरीश्वर

(१४) श्री संघराजजी ऋषि
(१५] श्री सुखमल्लजी ऋषि
(१६) श्री भागचन्द्रजी ऋषि
(१७) श्री वालचन्द्रजी ऋषि
(१८) श्री माणकचन्द्रजी ऋषि
(१९) श्री मूलचन्द्रजी ऋषि (काल सं० १८७६)
(२०) श्री जगतचन्द्र जी ऋषि
(२१) श्री रत्नचन्द्रजी ऋषि
(२२) श्री नृपचन्द्रजी ऋषि (अन्तिम गादीधर, आगे गादीधर नहीं)

नान्हो पक्ष के कुछ आचार्यों का परिचय

(९) श्री जीवाजी ऋषि के पट्ट पर ऋषि कुंवरजी हुए। प्राचीन पत्र के अनुसार माता पिता आदि ७ व्यक्तियों के साथ संवत् १६०२ में आप जीवाजी ऋषि के पास दीक्षित हुए। जब आप वालापुर पधारे तो वहां के श्रावकों ने आपको पूज्य पदवी प्रदान की, तब से कुंवरजी के साधु नान्ही पक्ष के कहे जाने लगे।

(१०) **ऋषि श्रीमल्लजी**: आपका जन्म अहमदावाद निवासी शाह थावर पोरवाल के यहां हुआ। आपकी माता का नाम कुंअरी था।

सवत् १६०६ की मृगसिर शुदी ५ के दिन अहमदाबाद में ऋषि जीवाजी के पास आप दीक्षित हुए। संवत् १६२६ को ज्येष्ठ बदी ५ के दिन ऋषि कुंवरजी के पट्ट पर आपको आचाय नियुक्त किया गया। कड़ी कलोल के पास गांव में पधार कर आपने अनेक लोगों को प्रतिबोध दिया।

आपके उपदेश से प्रभावित होकर लोगों ने जैन धर्म ग्रहण किया और अपने गलो मे कठिया उतार उतार कर कुए में गिरा दी। आज भी वह कुआ "कंठिया कुवा" के नाम से प्रसिद्ध है। तत्पश्चात् मच्छू काठा की ओर विहार कर आप मोरवी पधारे और वहा श्रीपाल सेठ आदि ४००० व्यक्तियों को प्रतिबोध दे कर श्रावक बनाया।

(११) **ऋषि रत्नसिहजी** श्रीमल्लजी ऋषि के पीछे ऋषि रत्नसिहजी हुए। आप हालार प्रान्त के नवानगर निवासी, मोल्हाणा गोत्रीय श्रीमाल सूरशाह के पुत्र थे। आपने अपनी पत्नी को बोध दे कर ६ व्यक्तियों के साथ सं० १६४८ मे अहमदाबाद मे दीक्षा ग्रहण की। सवत् १६५४ की ज्येष्ठ वदी ७ के दिन पूज्य श्रीमल्लजी ने स्वय आपको पूज्य पदवी प्रदान की।

(१२) **पूज्य केशवजी ऋषि** मारवाड के दुनाडा ग्राम मे आपका जन्म हुआ। आपके पिता का नाम श्री ओसवाल साहबजी (प्रभु वीर पट्टावली के अनुसार विजयराज ओसवाल) और माता का नाम जयवन्त देवी था। आपने स० १६७६ की फाल्गुन वदी ५ को ऋषि रत्नसिहजी के पास ७ व्यक्तियों के साथ दीक्षा ग्रहण की। सवत् १६८६ की ज्येष्ठ सुदी १३ को संघ ने मिल कर आपको पूज्य रत्न ऋषिजी के पट्ट पर आचाय नियुक्त किया। प्रभुवीर पट्टावली मे उस दिन आपका स्वर्गवास होना लिखा है, जो सही प्रतीत नहीं होता। ये केशवजी नान्हो पक्ष के है।

(१३) **ऋषि शिवजी महाराज** आचार्य केशवजी के पट्ट पर श्री शिवजी ऋषि हुए। आप नवानगर निवासी श्रीमाली सिघवी अमरसिंह के पुत्र थे। आपकी माता का नाम तेजबाई था। आपका जन्मकाल १६५४ है। आपने सं० १६६६ में श्री रत्नसिहजी के पास दीक्षा ली।

प्रभुवीर पट्टावली के अनुसार सं० १६३९ में जन्म और १६६० में दीक्षा लेने का उल्लेख है। आचार्य पद की तिथि भी प्राचीन पत्र में सं० १६८८ और प्रभुवीर पट्टावली में सं० १६७७ लिखी गई है। संवत् १७३४ में ६६ दिन के संथारे के बाद आपका स्वर्गवास हुआ। शिवजी ऋषि के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट घटनाओं का विवरण मिलता है, जो इस प्रकार है :

श्री रत्नसिंहजी ऋषि जब जामनगर पधारे तब तेजबाई जो अपुत्रा थी, आपको वंदन करने आई। रत्न ऋषिजी ने सहजभाव से कहा— "बाई ! धर्म की श्रद्धा से सुख संतति मिलती है, धर्म पर श्रद्धा रख।"

तेजबाई ने श्रद्धा के साथ रत्न ऋषिजी के इस वचन को स्वीकार किया। संयोगवश तेजबाई के पांच पुत्र हो गये। कालान्तर में पूज्य रत्न ऋषिजी फिर वहां पधारे और तेजबाई वन्दन करने के लिये अपने पुत्रों को साथ लिये आई। तेजबाई जब ऋषिजी को वंदन कर रही थीं उस समय उसके बड़े पुत्र शिवजी पूज्य रत्न ऋषिजी की गोद में जा कर बैठ गये।

यह देख कर तेजबाई ने कहा—"महाराज यह बालक आपके पास ही रहना चाहता है, अतः आप इसे अपना शिष्य बना लीजिये।"

पूज्य रत्न ऋषिजी ने बालक व बालक की मां की इच्छा देखकर शिवजी को अपने पास रखकर पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। थोड़े ही समय में तीक्ष्ण बुद्धि वाले शिवजी शास्त्रों के अच्छे ज्ञाता बन गये। शिवजी ने संवत् १६६० में दीक्षा ग्रहण की और सं० १६७७ में आपको आचार्य पद पर आसीन किया गया।

दूसरी विशिष्ट घटना इस प्रकार है कि एकदा पूज्य शिवजी ऋषि ने पाटण में चातुर्मास किया। वहां उनकी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई कीर्ति को चैत्यवासी सहन नहीं कर सके और उनके विरुद्ध बादशाह को भड़काने के लिये उनमें से कुछ प्रमुख व्यक्ति बादशाह के पास दिल्ली गये। यह घटना सं० १६८३ की थी। उस समय दिल्ली के तख्त पर "शाहजहां" था।

उन व्यक्तियों ने शिवजी ऋषि के विरुद्ध बादशाह के कान भरे। इसके परिणामस्वरूप बादशाह ने पूज्य शिवजी को चातुर्मास में ही दिल्ली बुलाया। स्थानांग सूत्र के वचनानुसार विहार योग्य कारण देख कर शिवजी ऋषि चातुर्मास में ही दिल्ली पधार गये।

बादशाह ने उनके साथ वार्तालाप किया और पूज्य शिवजी ऋषि के उत्तर प्रत्युत्तर से बादशाह बड़ा प्रभावित और प्रसन्न हुआ। बादशाह ने पूज्य शिवजी ऋषि को सं० १६८३ की विजयादशमी को पालकी सरोपाव के सम्मान से सम्मानित कर पट्टा लिख दिया। इस पालकी सरोपाव के सम्मान ने शिवजी ऋषि का ही नहीं लोंकागच्छ के समस्त यति मंडल को छत्रधारी एवं गादीधारी बना दिया।

छत्रधारी बनने के पश्चात् पूज्य शिवजी ऋषि जब अहमदाबाद आये उस समय भवेरीवाड़ा के नवलखी उपाश्रय में लोंकागच्छीय श्रावकों के बड़ी संख्या में घर थे। धर्मसिंहजी आदि पूज्य शिवजी के १६ शिष्य थे. गच्छ में परिग्रह का प्रसार देख कर धर्मसिंहजी आदि ने गच्छ का परित्याग कर दिया।

(१४) **श्री संघराज ऋषि :** आपका जन्म १७०५ की आषाढ़ सुदी १३ को सिद्धपुर में हुआ। आप पोरवाल जाति के थे। संवत् १७१८ में आप पिता और बहिन के साथ पूज्य शिवजी ऋषि के पास दीक्षित हुए। आपने जगजीवनजी के पास शास्त्राभ्यास किया और सं० १७२५ में आप आचार्य पद पर आसीन हुए। सं० १७५५, फाल्गुन शुक्ला ११ के दिन, ११ दिन के संथारे के पश्चात् ५० वर्ष की आयु में आपका आगरा शहर में स्वर्गवास हुआ।

(१५) **श्री सुखमलजी ऋषि :** श्री संघराजजी के पाट पर ऋषि सुखमलजी हुए। जैसलमेर (मारवाड़) के ग्राम आसणी कोट ग्रामवासी, सकलेचा गोत्रीय ओसवाल देवीदास के आप पुत्र थे, आपका जन्म सं० १७२७ में हुआ, आपकी माता का नाम रंभा बाई था। सं० १७३९ में ऋषि संघराजजी के पास आपने दीक्षा ग्रहण की। आपने १२ वर्ष तक

तपस्या की और सं० १७५६ में अहमदाबाद शहर में आचार्य पद पर विराजमान हुए। अन्तिम चातुर्मास धोराजी में कर के सं० १७६३ को आश्विन कृष्णा ११ के दिन आप स्वर्ग सिधारे।

(१६) **श्री भागचन्द्रजी ऋषि** : आप कच्छ भुज के निवासी और श्री सुखमल्लजी के भानजे थे। सं० १७६० को मार्गशीर्ष शुक्ला २ को आप अपनी भोजाई तेजबाई के साथ दीक्षित हुए। सं० १७६४ में भुज में आपको आचार्य पदवी मिली और संवत् १८०५ में आप स्वर्गवासी हो गये।

(१७) **श्री बालचन्द्रजी** : आप फलोदी (मारवाड़) के छाजेड़ गोत्रीय ओसवाल थे। आप अपने दो भाइयों के साथ दीक्षित हुए और संवत्१८०५में साँचोर में आपने पूज्य पदवी प्राप्त की। संवत् १८२९ में आप स्वर्गवासी हो गये।

(१८) **श्री माणकचन्द्रजी** : आप पाली (मारवाड़) के पास दरियापुर ग्राम के निवासी थे। आपका गोत्र कटारिया, पिता का नाम रामचन्द्र, और माता का नाम जीवाबाई था। सं० १८१५ में माँडवी में आप बालचन्दजी ऋषि के पास दीक्षित हुए। सं० १८२९ में जामनगर में आपको पूज्य पदवी प्राप्त हुई और सं० १८५४ में आपका स्वर्गवास हो गया।

(१९) **श्री मूलचन्दजी ऋषि** आप जालोर (मारवाड के पास मोरवी गांव के निवासी सियाल गोत्रीय ओसवाल थे। आपके पिता का नाम दीपचन्दजी और माता का नाम अजबा बाई था। संवत् १८४६, ज्येष्ठ शुक्ला १० को पूज्य माणकचन्दजी के पास आपने दीक्षा ग्रहण की और संवत् १८५४ फाल्गुन कृष्णा २ को नवानगर में आचार्य पद प्राप्त किया। सं० १८७६ में, जैसलमेर नगर में आपका स्वर्गवास हुआ।

(२०) जगतचन्दजी महाराज।

(२१) रतनचन्दजी महाराज।

(२२) श्री नृपचन्दजी महाराज।

इनकी गादी बालापुर में है।

बडोदा गादी के श्री पूज्य न्यायचद्रजी थे और जैतारण (अजमेर) की गादी के पूज्य विजयराजजी थे।

इनके उत्तराधिकारी यति हेमचन्द्रजी का भी बड़ौदा में स्वर्गवास हो गया अब यति भिक्खालालजी आदि है, किन्तु गादीधर कोई नही है।

(परिशिष्ट)

धर्मोद्धारक श्री जीवराजजी महाराज

लोकागच्छ की शिथिलता के बाद सत्रहवी सदी के अन्त में और अठारहवी के आरम्भ मे, जब लोकाशाह द्वारा जलाई गई धर्म-जागृति की ज्योति पुनः मद होने लगी तब कुछ आत्मार्थी पुरुषो ने क्रिया-उद्धार के द्वारा पुनः उस मलिनता व शिथिलता को दूर करना चाहा। उनमें श्री जीवराजजी, श्री धर्मसिहजी, पूज्य लवजी ऋषि, धर्मदासजी और हरिदास जी प्रमुख थे। उनकी शिष्य परम्परा का विस्तृत परिचय इस प्रकार है:—

प्रथम क्रियोद्धारक श्री जीवराजजी महाराज

पट्टावलियों के अनुसार जीवाजी और जीवराजजी नाम के दो महा पुरुष प्रसिद्ध हुए है। जीवराजजी महाराज की "जैन स्तुति पद्यावली" के अनुसार उनका समय १७वी शताब्दी का पश्चिमार्द्ध माना गया है। उन आचार्य जीवराजजी से संबंधित ५ शाखाएं आज भी विद्यमान है। वे इस प्रकार है —

(१) पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज की सम्प्रदाय,
(२) पूज्य श्री नानकरामजी महाराज की सम्प्रदाय,
(३) पूज्य श्री स्वामी दासजी महाराज की सम्प्रदाय,
(४) पूज्य श्री शीतलदास जी महाराज की सम्प्रदाय,
(५) श्री नाथूरामजी महाराज की सम्प्रदाय।

शाखा १ और उसकी आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री जीवराजजी महाराज,
(२) ,, लालचन्दजी म.

(३) पूज्य श्री अमरसिंह जी म. (जिनके नाम से सम्प्रदाय चलती है)
(४) ,, तुलसीदासजी म०
(५) ,, सुजानमल जी म०
(६) ,, जीतमल जी म०
(७) ,, ज्ञानमलजी म०
(८) ,, पूनमचन्दजी म०
(९) ,, ज्येष्टमल जी म०
(१०) श्री नैनमलजी म०
(११) प्रवर्त्तक श्री दयालचन्द जी म०
(१२) श्री नारायणदासजी म०
(१३) स्थविर मुनि श्री ताराचद जी म०।

वर्तमान में प० पुष्करमुनिजी अपने शिष्य मडल सहित विद्यमान है।

पू० श्री जीवनरामजी*
पू० श्री लालचन्दजी म के शिष्य
पू० श्री गगारामजी के पश्चात्

पू० श्री जीवनराम जी हुए। आप बड प्रभावशाली संत थे। आत्माराम जी म० जो पीछे से मूर्तिपूजक समाज में मिल गये, आप ही के शिष्य थे।

(१) पूज्य श्री जीवनराम जी
(२) श्री श्रीचन्दजी
(३) श्री जवाहर लाल जी, माणक चन्द जी एव उनके पन्नालाल जी
(४) पन्नालाल जी के
(५) श्री चन्दन मल जी महाराज, जो विद्यमान है।

(अ) शाखा २ और उसकी आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री जीवराजजी म०

*स्वर्ण जयति ग्रन्थ

(२) पू० श्री लालचन्दजी म०
(३) पू० श्री दीपचन्दजी म०
(४) पू० श्री मानकचन्दजी म०
(५) पू० श्री नानकरामजी म०(आपके नाम से सम्प्रदाय चलती है)
(६) पू० श्री वीर मणिजी म०
(७) ,, लक्ष्मणदास जी म०
(८) ,, मगनमल जी म०
(९) ,, गजमलजी म०
(१०) ,, धूलचन्दजी म०
(११) ,, प्रवर्त्तक श्री पन्नालाल जी म०
(१२) वयोवृद्ध प्र० छोटेलालजी म० आदि विद्यमान है।

(आ) शाखा २ की आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री नानकरामजी म०
(२) ,, निहालचन्दजी म०
(३) ,, सुखलालजी म०
(४) ,, हरकचद जी म०
(५) ,, दयालचद जी म०
(६) श्री लक्ष्मीचन्दजी म०। इस शाखा में मुनि श्री हगामीलालजी म० आदि ३ सन्त विद्यमान है।

शाखा ३ और उसकी आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री जीवराजजी म०
(२) ,, लालचन्दजी म०
(३) ,, दीपचन्दजी म०
(४) ,, स्वामीदासजी म०(जिनके नाम से सम्प्रदाय चलती है)
(५) ,, उग्रसेनजी म०
(६) मुनि श्री घासीरामजी म०
(७) मुनि श्री कनीरामजी म०
(८) ,, ऋषिरामजी म०

(६) मुनि श्री रंगनालजी म०

(१०) प्रवर्त्तक श्री फतेहलाल जी म० तथा श्री छगनलालजी म०। वर्तमान मे मुनि कन्हैयालालजी आदि विद्यमान है।

पूज्य श्री शीतलदास जी महाराज

सं० १७६३ में पूज्य श्री लालचन्द्र जी म० के पास आपने आगरा में दीक्षा ग्रहण की। आप रेगी ग्राम निवासी अग्रवाल वंशज महेश जी के सुपुत्र थे। १७४७ में आपका जन्म हुआ। ७४ वर्ष तक संयम पालन कर स० १८३६ पौष सुदी १२ को समाधिपूर्वक देह त्याग किया।

शाखा ४ और उसकी आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री जीवराजजी म०
(२) „ धनाजी म०
(३) „ लालचन्दजी म०
(४) „ शीतलदास जी म० (जिनके नाम से वर्तमान में सम्प्रदाय चलती है)
(५) पूज्य श्री देवीचंदजी म०
(६) मुनि श्री हीराचन्द जी म०
(७) „ लक्ष्मीचन्दजी म०
(८) „ भैरूंदासजी म०
(९) „ उदयचन्दजी म०
(१०) मुनि श्री पन्नालालजी म०
(११) „ नेमीचंदजी म०
(१२) „ वेणीचंद जी म० आप बड़े उग्र तपस्वी थे, आपने वर्षों तक केवल छाछ पर ही निर्वाह किया)
(१३) पूज्य श्री परताप चन्द जी म०
(१४) „ कजोड़ीमलजी म०, श्री छोगालाल जी म०। मोहन मुनि अभी विद्यमान हैं।

सती जमकंवर जी इस संप्रदाय की आचार निष्ठ और प्रभावशीला आर्या हैं ।

शाखा ५ और उसकी आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री जीवराज जी म०
(२) ,, लालचन्द जी म०
(३) ,, मनजी ऋषि म०
(४) ,, नाथूरामजी म० (जिनके नाम से अभी सम्प्रदाय चलती है)
(५) ,, लखमीचंद म०
(६) ,, छीतरमलजी म०
(७) ,, रामलालजी म०
(८) ,, फकीरचन्द जी म०
(९) धर्मोपदेष्टा मुनि श्री फूलचन्दजी म० आदि अभी विद्यमान हैं। मुनि सुशीलकुमार जी भी इसी परम्परा के ख्यातनामा संत हैं।

इसकी भी एक उपशाखा है, जिसमें मुनि श्री कुन्दनमलजी आदि इस प्रकार है:—

१. पूज्य रामचन्द्र जी	५. पूज्य बिहारीलालजी
२. ,, रतीरामजी	६. ,, महेशदासजी
३. ,, नदलालजी	७. ,, वख्वभागजी
४. ,, रूपचंदजी	८. ,, कुंदनमलजी

इन सभी शाखाओं में अभी कई वर्षों से आचार्य परम्परा उठ जाने से प्रवर्तक आदि पद-धारक मुनिराज ही सम्प्रदाय की व्यवस्था चलाते हैं।

(परिशिष्ट)

धर्मोद्धारक श्री धर्मसिंहजी

लोंकागच्छ के श्री पूज्य शिवजी म० के समय में धर्मसिंहजी नाम के

एक प्रसिद्ध महापुरुष हुए हैं, जिनका नाम भारत भर में प्रसिद्ध है। क्योंकि शास्त्रों पर टब्बा लिखकर उन्होंने समाज का सार्वदेशिक उपकार किया है।

इनका जन्म काठियावाड़ के हालार प्रान्त में जाम शहर में हुआ था, जिसको नगर भी कहते है। दशा श्रीमाल जाति के जिनदास आपके पिता और शिवा बाई आपकी माता थी। आपको बचपन मे ही सत्संगति मे प्रेम था। जब आप १५ वर्ष के थे तब लोंकागच्छ के श्री पूज्य रत्नसिंहजी के शिष्य श्री देवजी महाराज वहां पधारे। आप नित्य उनके व्याख्यान में जाया करते थे। उपदेश सुनते सुनते आपको वैराग्य हो गया। लेकिन बहुत समय तक माता पिता ने इन्हे दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति प्रदान नही की जिससे इन्हे रुकना पड़ा।

आखिर आपकी दृढ भावना का परिणाम यह हुआ कि आपके साथ आपके पिता भी दीक्षित हो गये। आप बड़े बुद्धिशाली थे। कहा जाता है कि आप केवल दोनों हाथों से ही नही, अपितु दोनों पावों से भी कलम पकड़ कर लिख सकते थे। कुशाग्र बुद्धि के कारण आपने अल्प समय में ही शास्त्रों का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। शास्त्रों के पढने से जब आपको मालूम हुआ कि शास्त्र मे भगवान् की आज्ञा कुछ और है और आज के साधु-वर्ग का आचार कुछ दूसरे ही प्रकार का है, तब आपने गुरुजी से निवेदन किया कि—"महाराज। आज का साधुवर्ग भगवान् की आज्ञा से बहुत उल्टा चल रहा है, इसलिये हमको गच्छ का मोह छोड़कर कष्टों और विरोधों का मुकाबला करना पड़ेगा, शासन सेवा के लिये हमे उनकी परवाह नही करनी चाहिये। यदि आप मुझे साथ दे तब तो बहुत ही अच्छी बात है, अन्यथा मुझे आज्ञा दीजिये, मै अपने शरीर का बलिदान देकर भी धर्म सेवा करने को तैयार हूँ।"

गुरुजी ने कहा—"अच्छा, यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो एक काम करो। आज की रात तुम शहर अहमदाबाद के बाहर दरिया खान के स्थान पर बिताओ, फिर मै खुशी से तुम्हे स्वीकृति दे दूंगा।"

धर्मसिहजी ने वैसा ही किया। दरिया पीर के उस भयंकर स्थान में

रात को कोई भी नही रह पाता था, लेकिन धर्मसिंहजी ने अपनी दृढ़ भावना और आत्मबल से पीर को भी शांत कर दिया। उन्होंने कुशलतापूर्वक रात दरिया पीर की दरगाह में बिताई।

प्रातः काल कुछ दिन चढने के बाद वे कालूपुर के उपाश्रय में गुरुजी के पास आये और विनय से सब बात कह सुनाई।

गुरुजी भी इनकी दृढ़ता और निर्भीकता से प्रसन्न हुए और बोले— "भाई! मैं तो वृद्ध हो जाने के कारण कष्ट सहने में लाचार हूँ तथा मुझसे यह गच्छ और यह वैभव नही छूटता। परन्तु तुम्हारी अन्त करण से यही इच्छा है तो जाओ और निर्भय होकर शासन की सेवा करो। तुम्हारा संयम निभ सकेगा।"

गुरु की आज्ञा से संतुष्ट होकर धर्मसिंह जी दरियापुर दरवाजे के बाहर आये और अन्य आत्मार्थी यतियों के साथ सं० १६६२ में ईशान कोण के बाग में शुद्ध सयम स्वीकार किया।

आप ऐसे विलक्षण बुद्धि वाले थे कि एक ही दिन में आपने और आपके शिष्य मुनि सुन्दरजी ने मिलकर १००० श्लोकों के ग्रन्थ को कंठाग्र कर लिया। शारीरिक कारण से भ्रमण कम होने पर भी आपने शासन की अपूर्व सेवा की।

पार्श्वचन्द्राचार्य की तरह आपने भी शास्त्रों पर बाल बोध ग्रथ के टब्बे किये। वाडीलाल मोतीलाल शाह ने आपके द्वारा २७ सूत्रों पर टब्बे किये जाने का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त

१. भगवती,
२ पन्नवणा
३. ठाणांग,
४. रायप्पसेणिय,
५, जीवाभिगम,
६. जम्बूद्वीपपन्नत्ति,
८. सूरपन्नत्ति के यन्त्र,
६ व्यवहार की हुँडी,
१०. सूत्र समाधि की हुंडी,
११. सामायिक चर्चा,
१२. द्रौपदी की चर्चा,
१३. साधु समाचारी,

७. चन्दपन्नत्ति, १४ चन्दपन्नत्ति की टीप

आदि ग्रन्थ भी आप द्वारा प्रणीत किये गये बताये जाते हैं। आपका समय काल १६८५ से १७२८ का माना जाता है। आसोज सुदि ४ सं० १७२८ को आप स्वर्गवासी हुए।

आपके दशम पट्टधर पूज्य श्री प्रागजी के समय में धर्म का बड़ा उद्योत हुआ। इनके समय में अहमदाबाद में साधुओं का आना बड़ा कठिन था।

एक समय आप सारंगपुर तलिया की पोल में गुलाब चंद हीराचन्द के मकान पर ठहरे हुए थे। आपके उपदेश से उस समय कई लोगों ने शुद्ध श्रद्धा धारण की। इससे प्रतिपक्षियों में ईर्ष्या उत्पन्न हुई।

आखिर सं० १८७८ में कोर्ट में जोरों से चर्चा शुरू हुई। इस ओर से मारवाड़ के पूज्य श्री रूपचन्दजी के शिष्य जेठ मलजी तथा कच्छ काठिया-वाड़ के २८ साधु थे और प्रतिपक्ष में मूर्ति पूजक संप्रदाय के वीर विजयजी आदि मुनि तथा पंडित थे। सं० १८७८ की पौष सुदि १३ को फैसला हुआ। मुनि श्री जेठमलजी ने युक्तिपूर्वक अपने मत का सबल एवं सम्यक् प्रतिपादन किया और शासन की महिमा को बढ़ाया। आपकी परम्परा खास कर गुजरात की सम्प्रदाय से ही सम्बन्ध रखती है। धर्मसिहजी का दरियापुरी संघाड़ा आज भी प्रसिद्ध है।

दरियापुरी समुदाय की आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री धर्मसिहजी महाराज
(२) „ सोमजी ऋषि „
(३) „ मेघजी ऋषि „
(४) „ द्वारिकादासजी ऋषि महाराज
(५) „ मोरारजी „ „
(६) „ नाथाजी „ „
(७) „ जयचन्दजी „ „

(८) पूज्य श्री मोरारजी ,, ,
(९) ,, नाथाजी ,, ,,
(१०) , प्रागजी ,, ,
(११) ,, शकर जी ,,
(१२) ,, खुशालजी महाराज
(१३) ,, हरखचन्दजी महाराज
(१४) , मोरारजी ,
(१५) ,, भवेरचन्दजी ,, (आप स० १९२३ मे वीरम गाव मे स्वर्गवासी हुए)
(१६) पूज्य श्री पुंजा जी ऋषि महाराज (स० १९१५ मे स्वर्गवास हुए)
(१७) ,, नाना भगवान जी ,,
(१८) ,, मलूकचन्दजी ,,
(१९) ,, हीराचन्दजी ,,
(२०) ,, रघुनाथ जी ,,
(२१) ,, हाथा जी
(२२) ,, उत्तम चन्द जी ,,
(२३) ,, ईश्वरलालजी महाराज
(२४) ,, चुन्नीलाल जी ,, ।

पूज्य लवजी ऋषि महाराज

सत्रहवी शताब्दी मे सूरत के दशा श्रीमाल सेठ वीरजी एक बड़े प्रतिष्ठित व्यवसायी और ख्यातनामा सेठ थे। उनकी फला बाई नामकी एक पुत्री थी। फूला बाई बालविधवा होने से पिता के घर पर ही रहती थी, इसलिये लवजी का पालन-पोषण भी वही हुआ।

लवजी बचपन में लोंका के उपाश्रय में पढने को जाते थे। जिससे एक दिन इनको विरक्ति हो गई। लेकिन सेठ वीरजी की आज्ञा लोंकागच्छ में ही दीक्षा लेने की थी, इसलिये उन्होंने तत्काल वज्रांग जी के पास ही

दीक्षा ली। दो वर्ष के बाद मयम मार्ग की शास्त्र से जानकारी होने पर इन्होंने गुरु से निवेदन किया और थोमगजी व सखा जी को साथ लेकर सं० १६६२ मे खभात मे शुद्ध मयम मार्ग का स्वीकार किया।

लवजी के दीक्षा समय पर विभिन्न प्रकार के उल्लेख प्राप्त होते हैं। पर इतिहास के सदर्भ को देखते हुए सं० १६६२ के आसपास ही इनका दीक्षित होना उचित जंचता था।

आचार्य लवजी महाराज से सम्बन्धित समुदायें

आपकी शाखा मे अभी चार समुदाय विद्यमान हैं।

(१) हरदास जी के पदानुसारी पूज्य श्री अमरसिंह जी महाराज का समुदाय (पंजाब)

(२) पूज्य श्री कानजी ऋषि का समुदाय,

(३) „ नाथ ऋषि जी महाराज का समुदाय (गुजरात)

(४) „ रामरतनजी „ „

इनकी आचार्य परम्परा क्रम से बताई जाती है :—

(परिशिष्ट)

पहले समुदाय की आचार्य परम्परा

(१) पूज्य श्री लवजी ऋषि

(२) „ सोमजी ऋषि

(३) „ हरिदास जी

(४) „ वृन्दावनजी स्वामी

(५) „ भगवान (भवानी) दासजी महाराज

(६) „ मलूकचदजी महाराज लाहोरी (आप बड़े उग्र-मार्गी थे),

(७) पूज्य श्री महासिंहजी महाराज (जो संवत् १८६१ में संथारा कर के स्वर्ग सिधारे)
(८) पूज्य श्री कुशलचन्द्रजी महाराज
(६) „ छजमलजी „
(१०) „ रामलालजो „
(११) „ अमरसिंहजी „
(१२) „ रामबक्स जी „
(१३) „ मोतीरामजी „
(१४) „ सोहनलालजी „
(१५) „ काशीरामजी „
(१६) „ आत्मारामजी महाराज जो वर्तमान श्रमणसंघ के आचार्य थे।

श्री हरिदासजी लाहोरी, लोंकागच्छ के यति थे और बड़े आत्मार्थी थे। किसी समय ये संयोगवश गुजरात आए। वहां पर उनका और सोमजी ऋषि का समागम हुआ। परस्पर धर्म-चर्चा में संतोष हो जाने पर हरिदास जी ने सोमजी के पास शुद्ध जैन धर्म दीक्षा धारण कर ली। कुछ समय गुरु सेवा में ज्ञान सम्पादन करके फिर ये पंजाब चले गये। वहां उनके शिष्यों की संख्या में बड़ी वृद्धि हुई।

दूसरे समुदाय की आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री लवजी ऋषि
२. „ सोमजी „
३. „ कानजी „
४. „ नागचन्द जी
५. „ काला ऋषि जी
६. „ बक्सु „
७. „ धन्ना „ (पृथ्वी ऋषि जी)
८. „ तिलोक „

९. मुनि श्री दौलत „ श्री अमी ऋषि जी आदि कई विद्वान् सन्त हुए।

१०. पूज्य श्री अमोलख „ महाराज (आप ३२ शास्त्रों के पहले अर्थकार है),

११. „ देवजी ऋषि महाराज

१२. „ आनन्द ऋषि जी महाराज जो वर्तमान में श्रमणसंघ के आचार्य हैं।

तीसरे समुदाय की आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री लवजी ऋषि महाराज
२. „ सोमजी „
३. „ कानजी „
४. „ तारा ऋषिजी महाराज
५. „ मगल „ „
६. „ रणछोड़ जी „
७. „ नाथाजी „
८. „ बेचरदास जी „
९. „ बड़े माणक चंदजी महाराज
१०. „ हरखचन्दजी „
११. „ भाणजी „
१२. „ गिरधरजी „
१३. „ छगनलालजी महाराज। श्री कान्ति ऋषि जी आदि विद्यमान हैं। यह खंभात समुदाय के नाम से गुजरात में प्रसिद्ध है।

चौथे समुदाय की आचार्य परम्परा

(१) पूज्य रामरतनजी महाराज की सप्रदाय मालवा में है। इसकी यह परम्परा प्राप्त न होने के कारण यहां उल्लेख नहीं किया गया है। हमारे खयाल से मालवा का यह समुदाय पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज की शाखा में होना चाहिये, जिसमें कि मुनि श्री मोतीलालजी और युवक

हृदय धनचन्द जी महाराज आदि विद्यमान हैं।

धर्मोद्धारक श्री हरजी महाराज

श्री हरजी महाराज कुंवरजी के गच्छ से निकल कर धर्मोद्धार करने वाले ६ महापुरुषों में से एक हैं, जिनका समय १६८६ के बाद का होना प्रतीत होता है। प्रभु वीर पट्टावली में सं० १७८५ के बाद हरजी के क्रिया उद्धार का उल्लेख उपलब्ध होता है, परन्तु ऐतिहासिक घटनाओं के साथ इसका मेल नहीं खाता [1]। अतः संवत् १६८६ के आसपास ही इनका क्रिया उद्धार का काल होना माननीय है।

हरजी महाराज से भी कुछ मुख्य शाखाएं प्रकट हुईं, जो कोटा समुदाय और पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की समुदाय के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन शाखाओं की आचार्य परम्परा इस प्रकार है :

शाखा (अ) कोटा समुदाय की आचार्य परम्परा

(१) पूज्य हरजी ऋषि
(२) पूज्य गोदाजी महाराज
(३) पूज्य परसरामजी महाराज
(४) पूज्य लोकमगरजी महाराज
(५) श्री मायारामजी महाराज
(६) पूज्य दौलतरामजी महाराज
(७) पूज्य श्री गोविन्दरामजी महाराज
(८) श्री फतेहचन्दजी महाराज

---

(१) पूज्य श्री हरदासजी महाराज के अनुयायी श्री मलूकचंदजी महाराज तथा पूज्य श्री परसरामजी महाराज के अनुयायी श्री खेतसीजी व खींवसीजी महाराज आदि पचेवर ग्राम में एकत्रित हुए और पूज्य श्री अमरसिंहजी महाराज के साथ सम्भोग सहयोग कर एक सूत्र में बंध गये। अमर मुनि चरित्र पृ० ३६।

(९) श्री ज्ञानचन्दजी महाराज
(१०) पूज्य छगनलालजी महाराज
(११) श्री रोड़मलजी महाराज
(१२) श्री पेमराजजी महाराज
(१३) श्री गणेशमलजी महाराज (खादी वाले)

आदि दक्षिण में विचरते हैं। श्री रामकुमारजी महाराज के शिष्य राम निवासजी माधोपुर की तरफ विचरते हैं।

शाखा (आ) कोटा समुदाय की आचार्य परम्परा

(१) श्री हरदासजी महाराज
(२) पूज्य श्री गोदाजी महाराज
(३) पूज्य श्री परसरामजी महाराज
(४) पूज्य श्री खेतसीजी
(५) पूज्य श्री खेमसीजी
(६) श्री फतेहचन्दजी
(७) श्री अनोपचन्दजी महाराज (सम्प्रदाय इनके नाम से चलती है)
(८) श्री देवजी महाराज
(९) श्री चम्पालालजी महाराज
(१०) श्री चुन्नीलालजी म०।
(११) श्री किशनलालजी म०।
(१२) श्री बलदेवजी म०।
(१३) श्री हरकचन्दजी महाराज मुनि मांगीलालजी महाराज इनकी परम्परा में अब साधु नही रहे।

परिशिष्ट

द्वितीय शाखा पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की समुदाय के

(अ) विभाग की आचार्य परम्परा

श्री पूज्य केशवजी। श्री कुंवरजी यति।

(१) पूज्य श्री हरजी ऋषि (सं० १७००)
(२) पूज्य श्री गोदाजी महाराज
(३) ,, फरसुरामजी ,,
(४) ,, लोकमलजी ,,
(५) ,, मायारामजी ,,
(६) ,, दौलतरामजी ,,
(७) ,, लालचन्दजी ,,
(८) ,, हुक्मीचन्दजी जिनके नाम से सम्प्रदाय चलती है।
(९) ,, शिवलालजी ,,
(१०) ,, उदयसागरजी ,,
(११) ,, चौथमलजी ,,
(१२) ,, श्रीलालजी ,,
(१३) ,, जवाहरलालजी ,,
(१४) ,, गणेशीलालजी ,, (जो श्रमण संघ के उपाचार्य थे।) अब संघ से पृथक उनके पट्ट पर पूज्य नानालालजी महाराज विद्यमान है।

शाखा (ब) की आचार्य परम्परा

(१२) पूज्य श्रीलालजी महाराज
(१३) ,, मन्नालालजी ,,
(१४) ,, खूबचन्दजी ,,
(१५) ,, छगनलालजी महाराज। वर्तमान में स्थविर किस्तूरचन्द जी महाराज विद्यमान हैं।

पंचम धर्मोद्धारक श्री धर्मदासजी महाराज

आपका जन्म अहमदाबाद के पास सरखेज में हुआ था। उस समय वहाँ पर भावसार जाति के ७०० घर थे जो लोंकागच्छ को मानने वाले थे। उन सब में जीवदास कालीदास प्रमुख थे। उनको डाही बाई नामक सुशीला पत्नी से संवत् १७०१ में आपका जन्म हुआ।

बचपन से ही आपका मन धर्म में रंगा हुआ था। इसलिये आपके माता पिता ने आपका नाम धर्मदास रखा। आठ वर्ष की आयु में जब आप पोशाल जाने लगे तब केशवजी के पक्ष के लोंकागच्छीय यति श्री पूज्य तेजसिहजी का सरखेज में पधारना हुआ। धर्मदासजी भी उनकी सेवा में जाने लगे। धार्मिक ज्ञान की शिक्षा लेने से उनको संसार से विरक्ति हो गई।

कुछ समय के बाद वहाँ कल्याणजी नामके पोतियाबन्ध श्रावक (एकलपांतरी) आये। उनके नवीन उपदेश को सुनने के लिए लोगो के साथ धर्मदासजी भी गये और उपदेश सुन कर बहुत सन्तुष्ट हुए। कल्याणजी श्रावक के आचार विचार से धर्मदासजी बड़े प्रभावित हुए। कही कही यह भी उल्लेख मिलता है कि वे आठ वर्ष तक पोतियाबन्ध श्रावक रहे।

एक बार भगवती सूत्र का वाचन करते समय उनको ऐसा पाठ मिला कि भगवान् महावीर का शासन २१ हजार वर्ष तक चलेगा। जब धर्मदासजी को यह प्रतीत हो गया कि इस समय भी शुद्ध संयम एवं मुनि धर्म का आराधन किया जा सकता है तो आप सच्चे सयमी की खोज में निकल पड़े और सर्वप्रथम श्री लवजी ऋषि से मिले, फिर अहमदाबाद मे श्री धर्मसिहजी महाराज के साथ भी आपका समागम हुआ।

श्री धर्मसिहजी महाराज के साथ आपकी तत्त्वचर्चा भी हुई। मालवे की कुछ पट्टावलियों मे लिखा है कि धर्मदासजी ने श्री कानजी महाराज के पास सूत्राभ्यास किया। लेकिन अपनी सत्रह बाते मान्य नही होने से उन्होने श्री कानजी महाराज के पास दीक्षा नही ली। कानजी महाराज श्री सोमजी के शिष्य हुए है और प्रभु वीर पट्टावली के लेखानुसार इनकी दीक्षा श्री लवजी ऋषि के स्वर्गारोहण के बाद मानी गई है। ऐसी दशा में श्री कानजी के पास धर्मदासजी का ज्ञानाभ्यास आदि विचारणीय है।

परन्तु यह निर्विवाद है कि कुछ मतभेद होने के कारण आपने श्रीधर्मसिहजी के पास दीक्षा ग्रहण नही की। दीक्षा के बाद धर्मदासजी को

तेले के पारणे में सर्वप्रथम एक कुम्हार के यहां से राख की भिक्षा मिली। उसको छाछ में घोलकर धर्मदासजी पी गये। दूसरे दिन जब धर्मसिहजी महाराज को वन्दन करने के लिये आप गये और पारणा में मिली हुई राख की भिक्षा का हाल उनकी सेवा में निवेदन किया।

यह सब सुनकर धर्मसिंहजी महाराज ने उनसे कहा, "महात्मन्! राख की तरह तुम्हारा शिष्य समुदाय भी चारों दिशाओं में फैलेगा और चारों ओर तुम्हारे उपदेशों का प्रचार एव प्रसार करेगा।"

श्री धर्मसिंहजी द्वारा की गई उक्त भविष्य-वाणी के अनुसार धर्मदासजी के शिष्यों की खूब वृद्धि हुई, आपके ९९ शिष्य हुए जिनमें से २२ पडित और प्रभावशाली थे।

सवत् १७२१ माघ शुक्ला पचमी के दिन उज्जैन में श्री संघ ने आपको आचार्य पद प्रदान किया। उसके बाद आपने वर्षों तक सत्य धर्म का प्रचार एव प्रसार किया और इस कालावधि में कुल ९९ शिष्यों को अपने हाथ से जैन मुनि परम्परा की दीक्षा प्रदान की।

सम्वत् १७५९ में एक घटना हुई। उस समय एक जैन मुनि ने जीवन का अन्त समय समझ कर संथारा कर लिया था, वह सथारे से डिगने लगा तब आप वहा (धार शहर) जाकर उसकी जगह संथारा कर बैठे और आठवें दिन सं० १७५९, आषाढ शु० ५ की संध्या को ५९ वर्ष की आयु में स्वर्गवासी होगये। आपके स्वर्गवास के बाद मूलचन्द जी आदि २२ मुनि धर्म प्रचार के लिये विभिन्न प्रान्तों में स्वतन्त्र रूप से विचरने लगे। तब इन २२ मुनियों के आश्रय में रहने वाला साधु समूह भी बाईस समुदाय के नाम से लोक में प्रसिद्ध हो गया।

बाईस समुदाय के नायक मुनि

१. पूज्य श्री मूलचन्द जी महाराज
२. „ धन्ना जी „
३. „ लालचन्द जी „

४.	पूज्य श्री	मन्ना जी	महाराज
५.	,,	मोटा पृथ्वीराजजी	,,
६.	,,	छोटा पृथ्वीचन्द जी	,,
७.	,,	वालचन्द जी	,
८.	,,	ताराचन्द जी	,,
९.	,,	प्रेमचन्द जी	,,
१०.	,,	रेवतमीजी	,,
११.	,,	पदार्थ जी	,,
१२.	,,	लोकमलजी	,,
१३.	,,	भवानीदास जी	,,
१४.	,,	मलूकचन्द जी	,,
१५.	,,	पुरुषोत्तमजी	,,
१६.	,,	मुकुटरामजी	,,
१७.	,,	मनोहरदासजी	,,
१८.	,,	रामचन्द्र जी	,,
१९,	,,	गुरुसदा साहबजी	,,
२०.	,,	वाघ जी	,,
२१.	,,	रामरतन जी	,,
२२.	,,	मूलचन्द जी	,,

हस्तलिखित पट्टावली मे उपरोक्त बाईस नामों का उल्लेख कुछ भिन्न तरह से मिलता है। उसमें पहिले श्री धर्मदास जी महाराज और इक्कीसवे श्री समरथजी का उल्लेख है। रामरतन जी का नाम नही मिलता ऊपर की नामावलि में भी श्री मूलचन्द जो महाराज का नाम दो बार भ्रान्ति से लिखा हुआ मालूम होता है। इन बाईस पूज्यो में से केवल १, २, ६, १७ और १८ वे ऐसे पाच पूज्यो की ही समुदाये आज वर्तमान है।

पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज से सम्बन्धित समुदायें

पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज के शिष्य श्री मूलचंद जो महाराज

की समुदाय से समय पाकर कई शाखा-उपशाखाएं निकल पड़ीं जिनमें वर्तमान ६ उपशाखाएं निम्न प्रकार है :–

पूज्य मूलचंद जी महाराज के सात शिष्य हुए जिनमेंसे ६ के समुदाय विद्यमान हैं, जो

१. लीमड़ी
२. गोंडल
३. बरवाला
४. बोटाद
५ सायला, और
६. कच्छ समुदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इनमें लीमड़ी, गोंडल और कच्छ की समुदायें मोटी पक्ष तथा नानी पक्ष के रूप मे दो भागों में बंटी हुई है। उन तीनों को बढ़ा देने पर ये ६ शाखा-उपशाखाएं हो जाती है।

प्रत्येक की पट्टावली

(१) लीमड़ी समुदाय की आचार्य परम्परा –

१. पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज
२. ,, मूलचन्दजी ,,
३ ,, पचागजी ,,
४. ,, इच्छा जी ,, (इनमें लीमड़ी समुदाय चला)
५. ,, हीराजी स्वामी (सं० १८३३ मे आचार्य पद)
६. ,, नान कानजी महाराज (सं० १८४१ में आचार्य पद)
७. ,, अजरामरजी ,, (सं० १८४५ मे आचार्य पद)
८. ,, देवराजजी ,,
९. ,, गुलाबचन्द जी महाराज।

---

(१) पूज्य इच्छा जी महाराज के लीमड़ी विराजने से यह लीमड़ी समुदाय कहलाने लगा।

सं० १८४४ तक समूचे काठियावाड़ में पूज्य धर्मदास जी महाराज का एक ही समुदाय था। कहा जाता है कि उसमें तीन सौ मुनि थे लेकिन पूज्य अजरामरजी महाराज के समय में ३२ बोल की मर्यादा बान्धने पर कुछ अन्तरंग कारणों से वह समुदाय छः भागों में विभक्त हो गया, जो –

१. लीमड़ी
२. गोंडल
३. ध्रांगध्रा
४. बरवाला
५. चूड़ा और
६. सायला की गादी के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१. लीमड़ी समुदाय

पूज्य देवजी स्वामी के समय में सं० १९१५ में लीमड़ी समुदाय के दो भाग हो गये। दूसरे विभाग की आचार्य परम्परा इस प्रकार है:—

१. पूज्य श्री अजरामर जी स्वामी
२. „ देवराजजी „
३. „ अविचलदासजी स्वामी
४. „ हिमचन्द जी „
५. „ गोपाल जी „ (आप बड़े प्रतापी हुए)
६. „ मोहनलाल जी „
७. „ मणिलाल जी अभी विद्यमान है।

२. गोंडल समुदाय

मूलचन्द जी महाराज के दूसरे शिष्य श्री पचांणजी महाराज के शिष्य रतन जी स्वामी हुए। उनके शिष्य डूंगरसी स्वामी संवत् १९४५ में लीमड़ी से गोंडल पधारे तब से गोंडल समुदाय की स्थापना हुई। डूंगरसी की मौजूदगी में ही गोंडल समुदाय के दो भाग हो गये जिनमें से दूसरा भाग संघाणी संघाड़ा (समदाय) के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

आचार्य परम्परा

(क) विभाग की

१. पूज्य श्री मूलचन्द जी स्वामी
२. ,, पचांण जी ,,
३. ,, रतन जी ,,
४. ,, डूगरशी स्वामी।

(ख) विभाग में अभी कोई साधु नहीं है।

३ बरवाला संघाड़ा

पं० श्री बनारसी जी स्वामी के शिष्य श्री कान जी स्वामी बरवाला गांव पधारे। तब बरवाला समुदाय की स्थापना हुई।

आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज
२ ,, मूलचन्दजी ,,
३. ,, वनाजी ,,
४. ,, पुरुषोत्तमजी ,,
५. ,, वनारसी जी ,,
६. ,, कानजी ,,
७. ,, रामरखा जी ,,
८. ,, चुन्नीलालजी ,,
९. ,, कविवर्य श्री उम्मेदचन्द जी महा०
१०. ,, मोहनलालजी महा० विद्यमान हैं।

वनारसी जी महा० के शिष्य जैसिंहजी और उदेसिंहजी स्वामी के चुड़ा नामक ग्राम में जाने से एक चुड़ा समुदाय (संघाड़ा) की भी स्थापना हुई, परन्तु अभी साधु न होने से वह सघाड़ा बन्द है।

४. बोटाद संघाड़ा

पंडित विट्ठल जी स्वामी के शिष्य भूषण जी स्वामी मोरवी पधारे और उनके शिष्य पूज्य वसरामजी "ध्रांगध्रा" पधारे। तब से "ध्रांगध्रा" संघाड़ा कहलाने लगा।

श्री निहालचन्द जी के बाद वह समुदाय बन्द हो गया परन्तु पूज्य बसरामजी के एक शिष्य पू० जसाजी महा० बड़े प्रतापी और आत्मार्थी हुये थे। कारणवशात् जब वे "ध्रांगध्रा" से बोटाद पधारे तब वे बोटाद समुदाय के नाम से कहलाने लगे।

आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज
२. " मूलचन्द जी "
३. " विट्ठलजी "
४. " हरखजी "
५. " भूषण जी "
६. " रूपचन्द जी "
७. " बसरामजी "
८. " जसाजी "
९. " अमरसिंह जी महा०।

श्री मूलचन्द जी स्वामी आदि अभी विद्यमान हैं।

५. सायला समुदाय

संवत् १८२९ की साल में पू० श्री नागजी स्वामी आदि ठाणा चार सायला पधारे और वहां गादी-स्थापना की। तब से यह सायला समुदाय कहलाने लगी।

आचार्य परम्पराः—

१. पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज

२. „ मूलचन्द जी
३. „ गुलाब चन्द जी
४. „ वाल जी
५. „ नागजी (मोटा तपस्वी)
६. „ मूलजी
७. „ देवचन्द्र जी
८. „ मेघराजजी
९. „ [illegible] जी
१०. मुनि श्री हरजीवन जी महाराज आदि मौजूद है।
११. पूज्य मुनि श्री मगनलाल जी महाराज
१२. „ लक्ष्मीचन्दजी महाराज
१३. „ कान जी महाराज
१४. „ कर्मचन्द जी महाराज।

६. कच्छ आठ कोटि (मोटी पक्ष)

पू० श्री इन्द्र जी महा० के शिष्य पू० श्री कृष्ण जी स्वामी कच्छ देश में पधारे और आठ कोटि की प्ररूपणा की। तब से कच्छ आठ कोटि सम्प्रदाय की स्थापना हुई। कालान्तर में कच्छ सम्प्रदाय के भी दो विभाग हो गये।

(१) आठ कोटि मोटी पक्ष और
( ) आठ कोटि नानी पक्ष।

आठ कोटि मोटी पक्ष की आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज
२. „ मूलचन्द जी „
३. „ इन्द्रजी „
४. „ सोमचन्द जी „
५. „ भगवान जी „
६. „ थोमगजी „

७. ,, करसन जी ,,
८. ,, देवकरण जी ,,
९. ,, डाह्याजी ,,
१०. ,, देवजी ,,
११. ,, रंगजी ,,
१२. ,, केशव जी ,,
१३. ,, करमचन्द जी ,,
१४. ,, देवराजजी ,,
१५. ,, मोणसी जी ,,
१६. ,, करमसी जी ,,
१७. ,, व्रजपाल जी ,,
१८. ,, कानमल जी ,,
१९. युवाचार्य श्री नागचन्द जी महा० ।

(कालक्रम से कच्छ समुदाय में भी विभाग हो गये जिनमें (१) आठ कोटि मोटी पक्ष और (२) आठ कोटि नानी पक्ष)

आठ कोटि नानी पक्ष की आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री करसनजी महाराज
२. ,, डाह्याजी
३. ,, जसराजजी
४. ,, बस्ताजी
५. ,, हंसराजजी
६. ,, व्रज पाल जी ,,
७. ,, डूंगरशी जी ,,
८. ,, सामजी ,, विद्यमान हैं।

१८५६ की साल में छः कोटि और आठ कोटि की तकरार होने से संघ में फूट पड़ गई। दोनों के धर्म-स्थान अलग-अलग कर दिये गये।

कहा जाता है कि अभी कई वर्षों से उसकी चर्चा न होने से संघ में शान्ति है।

(परिशिष्ट)

पूज्य श्री धन्नाजी महाराज का परिवार

पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के शिष्यों में श्री धन्नाजी महाराज भी एक प्रमुख थे। आपका जन्म मारवाड़ के सांचोर ग्राम में मूथा बाघा शाह के यहां हुआ था। सं० १७२७ में पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के पास आपने दीक्षा ली। आप बड़े तपस्वी और ज्ञानी थे। गुजरात से मारवाड़ में पधार कर आपने बड़ा धर्मोद्योत किया। मारवाड़ के मेड़ता ग्राम में आपका स्वर्गवास हुआ था। आपके बड़े शिष्य पूज्य भूधरजी महाराज[1] हुए, जिनकी शिष्य परम्पराएं आज भी विद्यमान हैं।

पूज्य भूधरजी महाराज का जन्म मारवाड़ के ग्राम सोजत में हुआ। आपने संवत् १७७३ में पूज्य श्री धन्नाजी के पास दीक्षा ली और संवत् १८०४ में स्वर्गवासी हुए। आपके ४ बड़े शिष्य हुए जिनकी शिष्य परम्पराएं इस प्रकार हैं :—

आचार्य भूधरजी महाराज की परम्पराएं

(१) पूज्य श्री रघुनाथजी महाराज की समुदाय की आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री धन्नाजी महाराज
२. „ भूधरजी „
३. „ रघुनाथजी „
४. „ टोडरमलजी „
५. „ दीपचन्दजी „
६. „ भैरोंदासजी „
७. „ जैतसीजी „
८. „ फौजमलजी „
९. „ संतोषचन्द्रजी „

---

(१) आप बड़े तपस्वी और प्रभावशाली आचार्य थे।

१०. पूज्य श्री मोतीलालजी महाराज
११. ,, श्री रूपचन्दजी ,,

उपशाखाएं

चौथे पूज्य श्री टोडरमलजी महाराज के द्वितीय शिष्य इन्द्रमलजी के बाद दूसरे पाट से दो प्रतिशाखाएं निकली, जिनमें महान् तपस्वी श्रीभानमलजी और बुधमलजी महाराज हुए। बुधमलजी महाराज के शिष्य मरुधर केसरी मिश्रीलालजी महाराज विद्यमान है।

पूज्य श्री भैरूंदासजी महाराज के समय श्री चौथमलजी महाराज अलग हुए और इनसे पूज्य चौथमलजी महाराज की पृथक् शाखा कही जाने लगी। इस परम्परा के सम्बन्ध में आगे बताया जा रहा है।

(२) पूज्य श्री जैतसीजी महाराज की दूसरी परम्परा

इस परम्परा में श्री उम्मेदमलजी महाराज, श्री मुलतानमलजी महाराज, तपस्वी श्री चतुर्भुजजी महाराज हुए। आगे साधु परम्परा नहीं रही।

पूज्य श्री जयमल्लजी महाराज की समुदाय की आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री जयमलजी महाराज
२. ,, रायचन्द्रजी
३. ,, आसकरणजी
४. ,, सवलदासजी
५. ,, हीराचन्द्रजी
६. ,, कस्तूरचन्द्रजी
७. ,, भीकमजी
८. ,, कानमलजी

पूज्य श्री कानमलजी महाराज के बाद वर्षों तक आचार्य पद रिक्त रहा।

उस समय श्री जोरावरमलजी महाराज के शिष्य श्री हजारीमलजी

महाराज और श्री नथमल्लजी महाराज के श्री चौथमलजी महाराज तथा श्री मगनमल जी स्वामी के श्री रावतमलजी महाराज, इन तीनों की व्यवस्था में संघ चलता रहा।

मध्यकाल में श्री हजारीमलजी महाराज के प्रिय शिष्य पं० श्री मिश्रीमलजी 'मधुकर' महाराज का आचार्य पद पर पदासीन किया गया। आपका नाम पूज्य श्री जसवन्तमलजी महाराज रखा गया, पर बाद में पुनः प्रवर्त्तक पद की परम्परा चालू होने पर वि० सं० २००६ मे सादड़ी के अखिल भारतीय स्थानकवासी मुनियों के बृहद् सम्मेलन में जब अखिल भारतीय संगठन के लिए आह्वान हुआ तो इस समुदाय ने श्रमण संघ में अपना विलय करके एकता के लिए आपने आचार्य पद का त्याग करके एक महान् त्याग का आदर्श प्रस्तुत किया। अभी स्थविर श्री रावतमलजी महाराज, श्री व्रजलालजी महाराज व श्री जोतमलजी महाराज आदि संत विद्यमान है।

(३) पूज्य श्री कुशलजी महाराज की समुदाय और आचार्य श्री रत्नचंदजी महाराज की आचार्य परम्परा

१. पूज्यपाद श्री कुशलजी महाराज
२. पूज्य श्री गुमानचन्द्रजी महाराज
३. ,, दुर्गादासजी ,,
४. पूज्य आचार्य श्री रत्नचन्द्रजी महाराज (आपके द्वारा क्रिया उद्धार करने के कारण सवत् १८५८ में आपके नाम से समुदाय चलने लगा)
५. पूज्य श्री हमीरमलजी महाराज
६. ,, कजोड़ीमलजी ,,
७. ,, विनयचन्दजी ,,
८. ,, शोभाचन्दजी ,,
९. ,, हस्तीमलजी महाराज जो वर्तमान में विद्यमान हैं।

(४) पूज्य श्री चौथमलजी महाराज की परम्परा

१. पूज्य श्री रघुनाथजी महाराज

२. पूज्य श्री टोडरमलजी महाराज
३. „ दीपचन्दजी „
४. „ भैरूंदासजी „
५. „ चोथमलजी महाराज (जिनके नाम से सम्प्रदाय कही जाती है)। मुनि श्री शार्दूलसिंहजी महाराज आदि।

श्री छोटा पृथ्वीराजजी महाराज की समुदाय और आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज
२. „ छोटा पृथ्वीराजजी „
३. „ दुर्गादासजी „
४. „ हरिदासजी „
५. „ गंगारामजी „
६. „ रामचन्द्रजी „
७. „ नारायणदासजी „
८. „ पूरामलजी „
९. „ रोड़मलजी „
१०. „ नरसिंहदासजी „
११. „ एकलिंगदासजी „
१२. „ मोतीलालजी „

वर्तमान में अम्बालालजी महाराज आदि विराजमान हैं।

४. श्री मनोहरदासजी महाराज की समुदाय की आचार्य परम्परा

१. पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज
२. „ मनोहरलालजी „
३. „ भागचन्द्रजी „
४. „ शीलारामजी „

५. पूज्य श्री रामदयालजी महाराज
६. ,, लूणकरणजी ,,
७. ,, रामसुखदासजी ,,
८. ,, ख्यालीरामजी ,,
९. ,, मंगलसेनजी ,,
१०. ,, मोतीरामजी ,,
११. ,, पृथ्वीचन्दजी ,, और उपाध्याय अमरमुनिजी आदि विद्यमान हैं।

५. श्री रामचन्द्रजी महाराज की समुदाय

श्री रामचन्द्रजी गोसांईजी के शिष्य थे। पू० श्री धर्मदासजी महाराज के धर्मोपदेश से प्रभावित होकर आपने २७ वर्ष की अवस्था में संवत् १७५४ में धार नगरी में दीक्षा ग्रहण की। आप बड़े पण्डित और प्रतिभाशाली सन्त थे। संवत् १८०३ में समाधिपूर्वक आपका स्वर्गवास हो गया। आपकी आचार्य परम्परा इस प्रकार है :—

१. पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज
२. ,, रामचन्द्रजी ,,
३. ,, माणकचन्द्रजी ,,
४. ,, जसराजजी ,,
५. ,, पृथ्वीचन्द्रजी ,, (मायाचन्द्र जी महाराज)
६. ,, अमरचन्द्रजी ,, बड़े
७. ,, अमरचन्द्रजी ,, छोटे
८. ,, केशवजी ,,
९. ,, मोखमसिंहजी ,,
१०. ,, नन्दलालजी ,,
११. ,, माधव मुनिजी ,,
१२. ,, चम्पालालजी ,,
१३. वयोवृद्ध श्री ताराचन्द्रजी महाराज
१४. श्री किशनलालजी ,,

वर्तमान में मधुरव्याख्यानी श्री सोभागमलजी महाराज आदि विद्यमान हैं ।

६ छठा समुदाय

यह समुदाय पूज्य श्री धर्मदासजी महाराज के नाम से ही प्रसिद्ध है। इसमें प्रवर्तक ताराचन्द्रजी महाराज आदि विद्यमान हैं। इसका एक विभाग पूज्य श्री रामरतनजी महाराज की समुदाय और दूसरी श्री ज्ञानचन्द्रजी महाराज की समुदाय के नाम से, भी प्रचलित है। जिनमें श्री मुनि मोतीलालजी महाराज धनचन्द्रजी महाराज तथा श्री रतनचन्द्रजी व सिरेमलजी महाराज, श्री पूरणमलजी महाराज व श्री इन्द्रमलजी महाराज हुए। पं० बहुश्रुत समर्थमलजी महाराज आदि आज विद्यमान हैं।

गुजरात के इतिहास और पट्टावली में ऐसा उल्लेख मिलता है कि धर्मदासजी महाराज के समय में "बावीस" समुदाय नामक धार्मिक संस्था का आविर्भाव हुआ। श्री धर्मदासजी महाराज और उनके शिष्य २२ विद्वान् मुनियों ने सत्य सनातन जैन धर्म का रक्षण किया जिससे लोग उसे बावीस समुदाय के नाम से सम्बोधित करने लगे।

श्री जीवराजजी महाराज, लवजी ऋषि और धर्मसिंहजी आदि की समुदाय इन २२ से पृथक् थी किन्तु उनकी श्रद्धा व प्ररूपणा समान होने से वे भी आज बाईस समुदाय के नाम से ही पहिचानी जाने लगीं। मौलिक २२ में से केवल ५ आचार्यों की ही समुदायें आज विद्यमान हैं। उनकी शाखाओं और उपशाखाओं में से मात्र १२ समुदायें होती है। वैसे अन्य ४ महापुरुषों की ११ समुदायों को मिलाने से २३ होती हैं। फिर पहले और दूसरे वर्ग की ६ उन समुदायों को मिला दिया जाय तो २८ होती हैं।

सादड़ी (मारवाड़) सम्मेलन के बाद राजस्थान की बहुत सी सम्प्रदायें श्रमणसंघ में विलीन हो गईं। सौराष्ट्र श्रमणसंघ तब भी अलग रहा और मारवाड़ में पूज्य ज्ञानचन्दजी महाराज की परम्परा के संत भी

श्रमणसंघ में सम्मिलित नहीं हुए। जो संत श्रमणसंघ में मिले थे वे भी अधिकांशतः संतोषजनक संघ-व्यवस्था के अभाव में श्रमणसंघ से पृथक् हो गये। इस प्रकार आज स्थानकवासी परम्परा में पूर्व की सम्प्रदायों के साथ श्रमणसंघ भी एक पृथक् सम्प्रदाय का रूप धारण कर बैठा है।

अनुक्रमणिका

क. आचार्य मुनि, राजा, श्रावकादि

अजबा बाई—१३०
अजयपाल—१००
अजरामर जी स्वामी—६३, १४६, १५०
अनोपचन्दजी महाराज—१४४,
अभयदेव सूरि—७४
अमरचंदजी महाराज—१०६, १५६
अमर मुनि—१००, १५६
अमरसिंहजी महाराज—८६, ६१, ६६, ६७, १३१, १३२, १४०, १४१, १५२,
अमरसिंह, सिंघवी—१२७,
अमी ऋषिजी—१४२
अमीपालजी—६२
अमृतलाल—६८
अमोलक ऋषिजी—१००, १४२
अम्बालालजी म०—१५८
अविचलदासजी स्वामी—१५०
अश्वमित्र—२०, २१

आ

आत्मारामजी म०—६६, १००, १०५, १३२, १४१,
आनंद ऋषिजी—१००, १०५, ११०, १११, १४२
आनंदविमल सूरि—७७,
आषाढ़ाचार्य—१६,
आसकरणजी—१५६

इ

इच्छाजी म०—१४६
इन्द्रजी म०—१५३
इन्द्रमलजी म०—१०१, १५६, १६०

ई

ईशरीदेवी—५६
ईश्वरलालजी म०—१३६

उ

उग्रसेनजी म०—१३३
उत्तमचंदजी म०—१३६
उत्तरा बहिन—७०
उदयगुप्त—६०
उदयचन्दजी म०—११०, १३४,
उदयसागरजी—१४५
उदेसिंहजी—१५१

उद्योतनसूरि—७३
उपनन्द – १३
उम्मेदचन्द्रजी – १५१
उम्मेदमलजी—१५६

ऋ

ऋषभदत्त – २३
ऋजुमती—१३
ऋषिरामजी म०—१३३

ए

एकलिंगदासजी म०—१०१, १५८

क

कजोड़ीमलजी म०—१२०, १२१, १३४, १५७
कनीरामजी—१३३
कन्हैयालालजी—१३४
कपूरदेवी—१२४
कबीर – ८५
कर्मचन्दजी म०—१५३, १५४
करमसीजी—१५४
करनसनजी म०—१५४
कर्मसिंहजी ऋषि—१२६
कल्याणचदजी ऋषि—१२६
कल्याणजी—१४६
कस्तूरचन्दजी म०—१४५, १५६
कान्ति ऋषिजी—१४२
कांतिविजयजी—१२२
कानजी ऋषि—६१, १२६, १४०, १४१, १४२, १४६, १५१, १५३,
कानजी स्वामी—१५१
कानमलजी— १५४, १५६
कान्हामुनि—६६
कालकाचार्य—२६, २७, ३४, ३५
काला ऋषि—६१, १४१
काशीरामजी—१००, १४१
किशन मुनि—१०१
किशनलालजी म०—१४४, १५६
कुंअरी—१२६
कुन्दनमल फिरोदिया—६८, १०२
कुन्दनमलजी म०—६६, १००, १३५
कुंवरजी ऋषि—१२२, १२५, १२६, १२७, १४३,
कुंवरजी यति—१४४
कुमारपाल—७६, ७८,
कुरसनजी—१५३
कुशलचन्दजी—१४१
कुशलजी—६४, १२०, १५७,
कृष्ण आर्य—६७, ६८
केशवजी—१२२, १२५, १२६, १२७, १४४, १४६, १५४, १५६,
कोटि सेठ—७६
कोट्टवीर—७०
कौडिन्य—७०

खपुट आर्य—३४, ३५
खुशालजी म०—१३६
खूबचन्द जी—१२६, १४५

खेतसी जी—१४४
खेमसी जी—१४४
ख्यालीरामजी—१५६

ग

गंग मुनि—२१, २२
गंगारामजी—१३२, १५८
गजमलजी म०—१३३
गणिभद्र—१३
गणेशमलजी म०—१४४
गणेशीलालजी म०—१०५, १४५
गर्दभिल्ल—२६, २७
गिरधर जी—१४२
गुणसुन्दर आचार्य—३४, ३५
गुप्त आर्य—५७
गुमानचन्द जी म०—१२०, १५७
गुरुसदासाहब जी—१४८
गुलाबचन्द—१३८
गुलाबचन्दजी म०—१४६, १५३
गोदाजी म०—१४३, १४४, १४५
गोबू—७५
गोपाल जी—१५०
गोविन्दरामजी म०—१४३
गोष्ठामाहिल—६१, ६३, ६४, ६५, ६६

घ

घासीरामजी—१३३

च

चक्रेश्वरी देवी—७५
चन्दनमल जी—१३२
चन्द्रप्रभ मुनि—७३, ७४
चन्द्र सूरि—७२, ७३, ७४, ७८, ७६
चम्पालाल जी—१४४, १५६
चतुर्भुज जी—१५६
चांदमलजी—११४
चुन्नीलालजी म०—१३६, १४४, १५१
चौथमल जी—१०१, १४५, १५६, १५७, १५८

छ

छगनलाल जी—१०१, १३४, १४२
छोगालाल जी—१०१, १३४
छजमल जी—१४१
छीतरमल जी—१३५
छोटेलाल जी म०—१३३

ज

जंबू स्वामी—३, ४, १३
जगजीवन जी—१२६, १२६
जगतचन्द्र सूरि—७७, ७६, १२६, १३०
जगमाल ऋषि—१२३
जगरूपजी—१२६
जगाजी—१२५
जयचन्द्र सूरि—८१
जयचन्दजी ऋषि—१२६, १३८
जयमलजी—६४, १२०, १५६
जयवन्त देवी—१२७
जयसिंह सूरि—७५
जवाहरलालजी म०—६२, ६६, १००, १०१, १३२, १४५

जसकंवरजी—१३५
जसराजजी—१५४, १५६
जसवन्त ऋषि—१२५
जसवन्तमलजी म०—१५७
जसाजी—१५२
जिनदत्त सूरि—५४, ५५, ५६, ७४, ७५
७६
जिनदास—१३६
जिनवल्लभ—७४, ७५
जिनेश्वर सूरि—७४
जीतमलजी म०—१३२, १५७
जीवनरामजी म०—१३२
जीवराज जी म०—८८, ८९, ९०,
१२५, १३१ १३२, १३३, १३४, १३५,
१६०
जीवदास कालिदास—१४५
जीवा बाई—१३०
जीवाजी ऋषि—८७, ८८, १२२, १२४,
१२५, १२६, १२७, १३१
जेठमलजी—१३८
जैतसीजी—१५५, १५६
जैत्रसिंह—७७, ७९, ८०
जैसिंहजी—१५१
जोधराजजी—१०१
जोरावरमल जी—१५६
ज्ञानचन्दजी म०—९४, १४४, १६०
ज्ञानमलजी म०—१३२
ज्येष्ठमलजी म०—१३२

झ

झवेरचन्द जादव—९८
झवेरचन्दजी म०—१३६

टेकचन्द लाला—९८
टोडरमलजी म०—१५५, १५६, १५८

ड

डाह्या जी—१५४
डाहीबाई—१४५
डूंगरसी स्वामी—१५०, १५१, १५४

त

तारा ऋषि—९१, १४०, १४२
ताराचन्दजी म०—१०१, १३२, १४१,
१४८, १५६, १६०
तिलोक ऋषि—१४१
तीसभद्र—१३
तुलसीदास ऋषि—१२६
तुलसीदासजी म०—१३२
तेजपाल—१२४
तेजबाई—१२७, १२८, १३०
तेजसिंह यति—१४६
तेजसिंह ऋषि—१२६
तोसलीपुत्र आचार्य—४१; ४२, ४३, ४४

थ

थावर शाह—१२६
थांभणजी म०—१५३

द

दयालचन्दजी म०—१३२, १३३

दयालजी—१०१

दरिया पीर—८६, ९०, १३७

दामोदर ऋषि—१२५

दीपचन्दजी म०—८६, ९७, १३०, १३३, १५५, १५८

दीर्घ भद्र—१३

दुर्गादासजी म०—१२०, १५७, १५८

दुर्बलिका मित्र—४७, ६१, ६४, ६५, ६६

दुर्लभजी झवेरी—९८, ९९, १००

दुर्लभराज—७४

दूष्यगणी—३०

देवकरणजी म०—१५४

देवचन्द्र उपाध्याय—७७

देवचन्द्रजी—१५३

देवजी—१३६, १४२, १४८, १५०

देवपाल—३७

देवभद्र सूरि—७६, ७८, ८१

देवराजजी—१४९, १५०, १५४

देवर्धि आचार्य—३०

देववाचक—३०

देवीचन्दजी—१३४

देवीदास—१२९

देवेन्द्र सूरि—७७, ८०. ८१

दौलतरामजी—९२. १४२, १४३, १४५

द्रोण श्रेष्ठी—७५

द्वारिकादासजी—१३८

ध

धनगिरि—४९, ५०, ५१, ५२. ५३

धनचन्द्रजी—१०१. १४३, १६०

धन्ना ऋषि—८९, ९२ ,९३, ९४, १३४, १४१, १४७, १५५

धन्य सेठ—५३

धर्म आर्य—३४, ३५

धर्म घोष सूरि—८१. ८२, ८३

धर्मदासजी म०—८८, ९२, ९४, ९५, १०१, १३१, १४२, १४६, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५३, १५५, १५८, १५९, १६०

धर्मसागर जी—७२

धर्मसिंह जी—८८, ८९, ९०, ९२,१२९, १३१, १३५, १३६, १३७, १३८, १४६, १६०

धूलचन्दजी म०—१३३

धोराजी—१३०

नन्द राजा—१४

नन्दलालजी म०—१३५, १५९

नंदिल—२७, २८

नथमलजी म०—१५७

नन्दन भद्र—१३

नरसिंहदासजी म०—१५८

नागचन्द जी म०—१०२, १५४

नागजी (मोटा तपस्वी)—१५३

नागमणि—२२

नागसी स्वामी—१५२

नाग हस्ती—२८

नागार्जुन आचार्य—२९, ३०, ३२, ३३

नागेन्द्र—५५, ५६
नाथाजी—१२८, १३६, १४२
नाथूरामजी म०—८६, १३१, १३५
नानकरामजी म०—८६, १३१, १३३
नानकानजी म०—१४६
नानचन्दजी—१०२
नाना भगवान जी—१३६
नानालालजी म०—१४५
नारायण मुनि—१०१
नारायणदासजी—१३२, १५८
निहालचन्दजी—१३३, १५२
नेमीचन्दजी—१३४
नूनजी—१२२
नूना ऋषि—१२३
नृपचन्दजी ऋषि—१२६
नैनमलजी म०—१३२
न्यायचन्द्र सूरि—१२६, १३१

प

पचांणजी—१४६, १५०, १५१
पदार्थजी—१४८
पद्मावती देवी—७५
पन्नालालजी—१०१, १०३, ११४, १३३, १३४
परतापचन्दजी—१३४
परसरामजी म०—१४३, १४४
पांडु भद्र—१३
पार्श्वचन्द्र आचार्य—१३७
पुरुषोत्तमजी—१५१
पुरुषोत्तमदासजी—१४८
पुष्कर मुनि—११४, १३२
पुण्यमित्र—६१, ६४
पूंजाजी—१३६
पूनमचन्दजी म०—१३२
पूरणमलजी म०—१६०
पूरामलजी म०—१५८
पूर्णभद्र—१३
पृथ्वीचन्द्रजी म०—६४, १००, १५८, १५६
पृथ्वीराजजी (छोटा)—१४८, १५८
पृथ्वीराज जी (मोटा)—१४८
पोट्टशाल परिव्राजक—५७, ५८, ५६
प्रेगचन्दजी म०—१४८
प्रेमराजजी म०—१६४
प्यारचन्दजी म०—१०५
प्रभवसिंह
प्रभवा आचार्य —३, ४, ५, ६, १०
प्रागजी—१३८, १३६

फ

फकीरचन्दजी—१३५
फतहचन्दजी म०—१४३, १४४
फतेहलालजी म०—१३४
फरसुरामजी—१४५
फल्गुरक्षित—४४, ४५, ६४
फूलचन्दजी—१००, १३५
फूलांबाई—१३६
फौजमलजी म०—१५५

ब

बक्कुऋषि—१४१

बनारसीजी स्वामी—१५१
बलदेवजी म०—१४४
बलभद्र—१६
बलश्री महाराज—५७
बलिस्सह आर्य—२३, २५, २६, ३१
बसरामजी—१५२
बस्ताजी—१५४
बाघजी—१४८
बाघाशाह मूथा—१५५
बालचन्दजी ऋषि—१२६, १३०, १४८
बालजी—१५३
बिंबसार—१२०
बिसनदास—६८
बिहारीलालजी—१३५
बुधमलजी—१५६
बेचरदासजी म०—१४२
व्रजलालजी म०—१५७

भगवानजी म०—१५३
भगवानदासजी म०—१४०
भद्दा ऋषिजी - १२३
भद्रगुप्त—३४, ३५, ४३, ४४, ५३
भद्रबाहु—१२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, ३१
भद्रसूरि सामन्त—७२
भवानीदासजी—१४८
भागचन्दजी ऋषि—१२६, १३०, १५८
भाणजी / भाणाजी —८७, ८८, १२२, १२३, १४२
भानमलजी म०—१५६
भिक्खालालजी—१३१
भीकमजी—१५६
भीखमजी—६५
भीमा ऋषि—१२३
भूतगुप्त—४७
भूतदिन—२०
भूधरजी—६४, ६६, ६७, १२०, १५५
भूषणजी म०—१५२
भैरूदासजी म० / भैरोंदासजी —१३४, १५५, १५६, १५८
भोजराजजी—१०१

मगल ऋषिजी—१४२
मगलसेनजी - १५६
मंगू आचार्य—२७, २८
मगनमलजी म०—१५७
मगन मुनि—१३३
मगनलालजी म०—१५३
मणिनाग—२२
मणिलालजी म०—६३, १०२, १२३, १२४, १२५, १५०
मदनलालजी म०—१००, १०६, १०८
मनक मुनि—७, ८, ६, १०, ११
मनजी ऋषि - ८६, १३५
मन्नालालजी म०—६२, १०१, १४५, १४८
मनोहरदासजी म०—१४८

मनोहरलालजी म० —६४, १५८
मलूकचन्दजी म०—१३६, १४०, १४८
महेशजी—१३४
महेशदासजी—१३५
महागिरि -१६, २०, २१, २३, २४, २५, २६, २६
महावीर स्वामी—२, १२०
महासिहजी—१४१
मांगीलालजी म० – १४४
माणकचन्दजी म०—१२६, १३०, १३२, १३३, १५६
माणकचन्दजी (बडे)—१४२
माधव मुनि—१५६
मायारामजी म०—१४३, १४५
मिश्रीमलजी (मधुकर)—१५७
मिश्रीमलजी (मरुधर केसरी)—६६, १०१, १५६
मुकुटरामजी—१४८
मूलचन्दजी—६२, ६३, १२६, १३०, १४७, १४८, १४६, १५०, १५१, १५२
मूलजी—१५३
मेघराजजी म०—१२६, १३८, १५३
मोखमसिंहजी म०—१५६
मोतीरामजी—१४१, १५६
मोतीलालजी (मूथा)— ६८
मोतीलालजी म०—१०२, १४२, १५६, १५८, १६०
मोगरजी म० —१३८, १३६
मोहन ऋषि—१००
मोहन मुनि – १३४
मोहनलालजी ६३, १५०, १५१
मौणसीजी—१५८

य

यशोभद्र—१०, ११, १२, १३, १४
यक्षा—१७

र

रगजी म०—१५४
रगलालजी—१३४
रभाबाई—१२६
रक्षित आर्य—२७, ३१, ३४, ३५, ३६, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४६, ६१, ६३, ६४, ६५
रघुनाथजी म०—६४, ६५, १३६, १५५, १५७
रणछोडजी म०—१४२
रतनचन्दजी म०—६३, १००, १०२, १२०, १२१, १२६, १३०, १५७, १६०
रतनचन्द लाला—६८
रतनजी - १५०, १५१
रत्नीरामजी—१३५
रत्नसिंहजी ऋषि—१२५, १२७, १२८, १३६
रामकुमारजी म०—१४८
रामचन्द्रजी म०—६३, ६४, १३५, १३७, १४८, १५८, १५६
रामदयालजी म० – १५६
रामनिवासजी म०—१४८

रामबक्सजी म०—१४१
रामरखाजी म०—१५१
रामरतनजी म०—६१, १४०, १४२, १४८, १६०
रामलालजी म०—१३५, १४१
रामसुखदासजी म०—१५६
रामचन्दजी म०—६८, १५६
रावतमलजी म०—१५७
रुक्मिणी · ५३
रूप ऋषि—८७, ८८, १२४
रूपचन्दजी म०—१३५, १३८, १५२, १५६
रूपसिंहली ऋषि—१२५
रेवतीसिंहजी—१४८
रेवती आचार्य—२८, २६
रेवती मित्र—३४, ३५,
रोडमलजी म०—१४४, १५८
रोहगुप्त आर्य—५७, ५८, ५६, ६०, ६१

ल

लखमसी—१२२
लखमीचन्दजी—१३५
लक्ष्मणदासजी म०—१३३
लक्ष्मीचन्दजी म०—१३३, १३४, १५३
लवजी ऋषि—८८, ६०, ६१, १३१, १३६, १४०, १४१, १४२, १४६, १६०
लालचन्दजी म०—८६, ६७, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १४५, १४७
लूणकरणजी म०—१५६
लूंका, लोंका, लोंकाशाह—७६, ७७, ८४, ८५, ८६, ८७, १२१, १२२, १३१, १३६,
लोकमणजी म०—१४३,
लोकमलजी म०—१४५, १४८
लोहित्य आर्य—३०

व

वज्रसेन आचार्य—३१, ५४, ५५, ५६, ६१,
वज्रस्वामी—३४, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ६१,
वज्रांगजी—१३६
वनाजी—१५१,
वरखमाणजी—१३५
वरसिंहजी—१२५
वरसिंहजी (लघु)—१२५
वाराहमिहिर—१४,
वर्द्धमान पितलिया—६६, १००
वसुभूति—२४
वस्त्रपुष्य—६४
वाडीलाल मोतीलाल शाह—१३७
विंध्य-नरेश—५
विंध्य मुनि—६४, ६६
विक्रम, विक्रमादित्य—३४, ३५, ३६, ३७
विजयचन्द्र म०—७५, ७७, ८०, ८१
विजयराज—१२७, १३१
विट्ठलजी स्वामी—१५२
विद्याधर—५५, ५६

विनयचन्द्र उपाध्याय—७३, १२०, १२१, १५७
वीरजी—६०, ६१, १३६
वीरमणिजी म०—१३३
वीरविजय—१३८
वीरसिंह—१२२
वृन्दावनजी स्वामी—१४०
वेणीचन्दजी—१३४
वैरोट्यादेवी—२७, २८
व्रजपालजी—१५४

शोभाचन्दजी—१५७
श्यामजी म०—१०२
श्यामाचार्य—२५,२७
श्री गुप्त सूरि—३४, ३५, ५७, ६१,
श्री चन्दजी—१३२
श्रीपालजी—६२
श्रीपाल सेठ—१२७
श्रीमल्लजी ऋषि—१२५, १२६, १२७
श्रीलालजी म०—१४५

श

शंकरजी—१३६
शंडिल आचार्य—२७
शकडाल—१४
शय्यंभव आचार्य—५, ६, ७, ८, ६, १०, ११, १२,
शय्यांतरी बहन—५०, ५१
शार्दूलसिंहजी—१५८
शाहजहाँ बादशाह—१२८
शिवजी म०—८८, ६०, १२५, १२७, १२८, १२६, १३५,
शिवभूति—६७, ६८, ६६, ७०, ७१,
शिवलालजी म०—१४५
शिवाबाई—१२६
शीतलगुण सूरि—७६
शीतलजी—१०१
शीतलदासजी—८६, १३१, १३८
शीलारामजी—१५८

संघजी—१५३
संघराज ऋषि—१२६, १२६
संघवी तोला—१२३
संतोषचन्दजी—१५५
संप्रति राजा—१६, २०, २३
संभूतिविजय—१२, १३
सवाजी—१२३, १२४
सबलदासजी म०—१५६
समर्थमलजी म०—१०१, १०५, १०६, १०७, १४८, १६०
समुद्र आर्य—२७
सरस्वती बहिन—२६
सर्वदेव सूरि—७३
सहसमल आचार्य—७१
सामीदासजी—८६
सामजी—१५८
सिंह आर्य—२८, २६
सिंहगिरि—४६, ५३,

सिद्धसेन---३४, ३५, ३६, ३७,३८, ३९,
सिरेमलजी - १६०
सीमंधर स्वामी—४७, ४८, ७५,
सुंकपाल—२१
सुखमल्लजी ऋषि—१२६, १२९, १३०
सुखलालजी म०—१३३
सुजानमलजी म०—१०१, १३२
सुधर्मा स्वामी---२, ३, २६,
सुनन्दा आर्या--४९, ५०, ५१
सुन्दरजी—१३७
सुप्रतिबुद्ध—२५
सुमतिविजय—१२२
सुमति सिंह—७८, ७९
सुलतानमलजी म०—१५६
सुशील कुमार जी—१३५
सुस्थित आचार्य—२३, २५, २६, ३१
सुहस्ती आर्य—१९, २०, २३,२४, २५, २६, ३४
सूरशाह—१२७
सोमचन्दजी ऋषि—१२६, १५३
सोमजी ऋषि—९१, १३८, १४०, १४१, १४६
सोमदेव—३९, ४०
सोमप्रभ—७९, ८०
सोमभद्र सूरि—८२
सोमसुन्दर—८४
सोमसूरि—८२
सोहनलाल जी म०—९७, १४१
सौभाग्यमल जी—१२१, १६०
सौभाग्य मुनि—१०१
स्कंदिल आर्य—२९, ३२, ३४, ३५
स्थूलभद्र--१३, १६, १७, १८, १९
स्वाति मुनि—२५
स्वामीदासजी म०—१३१, १३३

ह

हंसराज जी—१५४
हगामीलाल जी—१३३
हजारीमल जी—१५६, १५७
हमीरमल जी म०—१२०, १२१, १५७
हरखचन्द जी—१२६,१३३, १३९, १४२, १४४
हरखजी—१५२
हरजी ऋषि –८८, ९२ १४३, १४५
हरजीवन जी—१५३
हरिदासजी— ९१, १३१, १४०, १४१, १४४, १५८
हस्तीमल जी—१०१, १०५, १०९,११०, १११, ११४, १२१, १५७
हाथोजी—१३९
हिमचन्द जी —१५०
हिमवान आचार्य—२९
हीराचंदजी—१२४, १३८, १३९, १५६
हीराजी स्वामी—१४९,
हुक्मीचंदजी म०—९२, ९९, १४३,१४४, १४५,
हेमचन्द आचार्य—७८
हेमचन्दजी (यति)—१३१
हेमराजजी मुनि—१०१

ख. ग्राम, नगर, प्रान्त, स्थानादि

अ

अंतरंजिकापुर—५७

अजमेर—७९, ९८, १००, १०१

अमृतसर— ९८

अरहटवाड़ा—१२३

अहमदाबाद— ९३, १२३, १२४, १२६, १२७, १२९, १३०, १३६, १३८, १४५, १४६

आ

आगरा—१२६, १३४

आबू – ७३

आसणकोट—१२६

ई

ईडर—८४

उ

उज्जयनी / उज्जैन – ३६, ४२, ५३, ८१, ८२, १४७

उत्तरप्रदेश—८६

उदियापुर—१०९

उलुकातीर नगर—११

क

कंपिलपुर—२१

कच्छ—९८, १३०, १५३

कड़ीकलोल—१२७

कलिग—३१

काठियावाड़—९८, १३६, १३८, १५०

कालूपुर—१३७

कूर्मापुर—३७

ख

खमात—८०, ९०, ९१, १४०

खीचन—१०१

ग

गुजरात—८६, ९१, ९२, ९८, १०२, १२२, १४१, १४२, १५५, १६०

च

चम्पानगरी—७, ८

चित्रकूट / चित्तौड़ —३६, ३७

ज

जम्बू—९८

जामनगर—१२८, १३०, १३६

जालोर—१३०

जैतारण—१३१

जैसलमेर—१२६, १३०

जोधपुर—१०५, १०६

झ

झवेरीवाड़ा—१२४, १२९

ट

टेलिगांव—७३

ड

डेह—१२१

द

दंताणा—७५
दरियापोल—६०, १३०, १३६
दशपुर—३१, ३६, ४०, ४५, ६३
दिल्ली—६८, ११२, ११८, १२६
दुनाड़ा—१२७
देशनोक—१०६

ध

धार—१५१
ध्रांगध्रा—१५२

न

नवलखी उपाश्रय—१२४, १२६
नवानगर—१२७, १३०
नैपाल—१५
नोखामण्डी—१०६

प

पंजाब—८६, ८६, ६७, ६८, १०३, १०७
पाटण—७६, १२४, १२८
पाटलीपुर, पाटलिपुत्र, पटना—११, १५, २४, ३१, ३६. ४०, ५३
पाली—१२३, १३०
पावागढ़—७५, ७६
प्रतिष्ठानपुर—१४

फ

फलोदी—१३०

ब

बगड़ी—६५
बड़ोदा—१२२, १२५
बरवाला—१४६, १५०, १५१
बालापुर—१२२, १२६, १३१
बोटाद—१४६, १५२
ब्यावर—६८, १०३

भ

भरतक्षेत्र—४७
भारत—४८, ६७, ११२, १३६
भालेज—७६
भीनासर=१०५, १०७, ११२
भीमपल्ली—८२, ८३

म

मथुरा—३२, ४७, ४८, ६३
मध्यभारत—३२
मरुभूमि, मारवाड़—६२, ६३, १०१, १०३, १३८, १६०
महाराष्ट्र—६६
महाविदेह क्षेत्र—४७
महेन्द्रगढ़—१००
मांडवी—१३०
माधोपुर—१४४
मालवा—८०, ६१, ६३, ६४, १०३, १४२, १४६
मेड़ता नगरी—६६, ६७, १५५
मेरू गिरि—२५
मेवाड़, मेदपाट—७४, ६४, १०१, १०३
मोरवी—६८, १३०, १५२

र

रथवीपुर—६७, ६८
राजगृह—२, ५, २२
राजस्थान—८६, १०१, १०७
रेणी ग्राम—१३४

ल

लींबड़ी—६३, १४६, १५०
लुधियाना—११३

व

बल्लभी—३२, ३३, ३४, ७२, १०२
विंध्य—६२, ६५
वेणप नगर—७६

स

सरखेज—१४५, १४६
सांचोर—१३०
सारगपुर—१३८
सादड़ी—१०३, १६०
सायला—६३, १४६, १५२
सिद्धपुर—१२६
सिरोही—१२३, १२४
सूरत—६०, ६१, १२४, १३६
सोजत—१०४, १५५
सोपारक नगर—५५, ५६
सौराष्ट्र—६८, ११३, १६०

ह

हरियाणा—८६
हालार प्रान्त—१२७, १३६

ग. गण, गच्छ, शाखा, वंशादि

आ

आंचल, आंचलक, आंचलिया गच्छ—७३, ७५, ७६, ७६, ११३,
आगमिमा, आगमिक मत—७३, ७५, ७७
आठ कोटि मोटी पक्ष—१५४

उ

उत्तर बल्लिसह शाखा—२५

क

कच्छ संघाड़ा—६३, १४६
कड़वा मत—७६, ७७
कूचंपुर गच्छ—७४
कोटा परम्परा—६२, १४३, १४४,
कौटिक गण—२३, २५, २६

ख

खंभात समुदाय—१४२
खरतर गच्छ—७१, ७४, ७५, ७६ ११३,

ग

गुजरात की सम्प्रदाय—१३८
गुजराती लोंकागच्छ—१२२, १२५,
गोंडल सघाड़ा—६३, १४६, १५०

च

चन्द्र शाखा—५५, ५६, ७२
चूडा समुदाय—१५०, १५१
चैत्यवास परम्परा—७२
चैत्र गच्छ—७७,

ज्ञानवादी कविपंथ—११६

ढ

ढ़ूंढ़िया—६२

त

तपागच्छ—७३, ७७, १२२,
तेरापंथ - ६५, ११२, ११३,

द

दरियापुरी सम्प्रदाय—६०, १३८
दिगम्बर सम्प्रदाय—६४, ६६, ७७, ८४, ११२, ११३, ११६

ध

ध्रांगध्रा—१५०

न

नाइल कुल—३७
नानी पक्ष—१२६, १२७
निर्ग्रन्थ गच्छ—२६, ७३
निवृत्ति शाखा—५५, ५६
निश्चयवादी—११६

प

पंजाब परम्परा—६१, ६७, १००
पूनमिया, पूर्णिमा गच्छ—७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७६
पोतिया बंध—६२

ब

बड़ गच्छ—७३
बड़ोदागादी—१३१
बरवाला संघाड़ा—६३, १५१
बावीस सम्प्रदाय—६६
बीजामत—७६, ७७
बोटाद संघाड़ा—१५२

भ

भावसार जाति—१४५

म

मालव सम्प्रदाय—१०१

ल

लींबड़ी संघाड़ा—६३
लोंकागच्छ, लूंका गच्छ—७७, ८६, ८७, ८८, ८६, ६०, १२२, १२४, १२५, १२६, १३१, १३५, १३६, १३६, १४१, १४५, १४६

व

वनवासी गच्छ ७२
वर्धमान श्रमण संघ—१०३
वृद्धवादी—३४. ३५, ३६, ३८

ष

षडलूक (वैशेषिक)—६१

श

श्वेताम्बर सम्प्रदाय—६७, ६६, ७१, ७२, ११३, ११६

स

संघाणी समुदाय—१५०
साधुमार्गी—६२, ६६

सायला संघ—९३, १५०, १५२
स्थानकवासी—११२

घ. सूत्र, ग्रन्थादि

अ

अंगादि सूत्र—३१
आपकालिक सूत्र—२९

उपसग्गहर स्तोत्र—१४

च

चन्द पन्नति—१३८

ज

जम्बूद्वीप पन्नति—१३७
जीवाभिगम—१३७
जैन स्तुति पद्यावली—१३१

ठ

ठाणांग } —१२९, १३७
स्थानांग }

त

तपागच्छ पट्टावली—७२, ८१

द

दशवैकालिक सूत्र—९, १०, ११, ७४, ७५
द्रौपदी की चर्चा—१३७
दृष्टिवाद—१६

न

न्हानी पक्ष की पट्टावली—१२५

प

पन्नवणा—१३७
पाटलीपुत्र वाचना—१५
प्रभावक चरित्र—७४, ७९
प्रभु वीर पट्टावली—१२७, १२८, १४३, १४६

ब

बालबोध अर्थ के टब्बे—१३७

भ

भगवती सूत्र—१३७, १४६

म

मोटीपक्ष की पट्टावली—१२५

र

रायप्पसेणी—१३७

व

व्यवहार की हुंडी—१३७

स

सामायिक चर्चा—१३७
सूत्र समाधि की हुंडी—१३७
सूरपन्नति के यन्त्र—१३७

ह

हिमवन्त स्थविरावली—३१

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	५	केवल सिज्जरण	केवल मिज्जगा
४	६	ओहारक	आहरक
५	११	लगा	लगे
७	२२	खेलता	खेलना
७	२२	कूदता	कूदना
६	२६	आराघन	आराधन
१६	२०	वे	—
१७	७	पूरी पंक्ति	--
२१	१	नये	नय
२१	१	समाघान	समाधान
२२	१२	कमल	कमल-पत्र
२२	२६	अतः	—
२३	२८	ठान	ठाना
२५	२७	मनि	मुनि
३३	५	वसा	वैसा
३३	२४	देव ऋद्धि	देवर्द्धि
३४	१६	रास.	राघा०
३६	१६	में	—
३७	१०	दिवाकर	दिनकर
३६	५	पुनः	—
४६	२५	मेघावी	मेधावी
४६	१	पर	अतः
५०	२७	शय्यातरी	शय्यातरी अरु
५१	२२	क्योंकि	—
५२	१०	ऐषरणा	एषणा
५४	२०	सो पारक	सोपारक
५५	४	विद्याघर	विद्याधर
५५	१३	श्रवण	श्रमण
५७	१३	की	—
५७	२१	विचरते	विचरत
५६	२२	निश्चित	निश्चित किया
६०	१६	उदयगुप्त	उदय गुप्त
६१	६	महोदय	मोहोदय
६१	२०	बघ भेद	बंध भेद
६७	३	इस तरह दिगम्बर	दिगम्बर इस तरह
६७	१२	नउ	न
६८	१३	दिलायी	दिलाया
६६	५	घारा	धारा
६६	१७	आकाशाम्बर	आशाम्बर
६६	२७	आकाशाम्बर	आशाम्बर
७१	१८	माहावरण	मोहावरण
७१	२५	निश्चिय	निश्चय
७३	६	ना	का
७३	१६	चंद्र प्रभु	चन्द्र प्रभ
७८	२५	विगयायाग	विगय त्याग
७६	२३	सोम प्रेम	सोमप्रभ
८०	३	बिचार	बिहार
८२	३	उच्चयनी	उज्जयनी
८४	१२	यतिगत	यतिगण

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८५	१३	की	बात
८६	२३	भोर	और
८७	८	लोंकाशाह	लोंकाशाह की
८८	१६	पूरी पंक्ति	—
९०	१	गण	गण से
९०	१	चरित्र	चारित्र
९२	२	कथन की	कथन को
९३	१९	माटी	मोटी
९५	२	हठमतवाला	हठवाला
९६	२७	ही	के
९७	१३	रहते	रहता
९७	१७	मे	में
९९	२२	था	—
१०१	६	से	के
१०१	६	सघ	संग
१०१	२५	जोधराजजी, मोतीलाल जी, मुनि मोती लालजी	जोधराजजी मुनि
१०२	४	सरना	सरल
१०५	५	एव	एवं
१०५	१९	बद्धमान	वर्द्धमान
१०७	२६	ता	तो
१०७	२६	लना	लेना
११३	२४	श्रवण सघ	श्रमण संघ
११६	८	आकाशांबर	आशाम्बर
११८	२०	समह	समूह
११८	२१	आने	अपने
११८	२१	गुण न माने	गुणकर माने
१२०	१४	त्नचन्द्र	रत्नचन्द्र
१२१	३	रत्नचन्द्रजी	पूज्य रत्नचन्द्रजी
१२१	४	पधर	पट्टधर
१२१	६	सौभायमलजी	सौभाग्यमल जी
१२२	६	वैययन्ती	वैजयन्ती
१४२	८	तासरे	तीसरे
१४३	२	धमाद्धारक	धर्मोद्धारक
१४५	२१	छगनलाल जी	सहसमल जी